साहित्य की ऐसी शायद ही कोई विधा बची हो जिसमें शिवाजी के चरित्र पर कोई रचना न रची गयी हो। सिनेमा, रंगमंच आदि भी इससे अछूते नहीं।

लेकिन क्या इन सभी में हम शिवाजी का सर्वांगपूर्ण चरित्र-चित्रण पाते है? शायद नहीं। विषय-वस्तु की मांग या फिर रचनाकार के व्यक्तिगत आग्रह के कारण शिवाजी का जो रूप हमारे सामने आता है वह अक्सर एकांगी ही अधिक लगता है। और जहां तक शिवाजी कि धार्मिक आस्था, विश्वास और भक्ति का सवाल है उसे अक्सर ही विकृत रूप में पेश किया जाता है। हिन्दू धर्म के तथाकथित संरक्षक भी डंके कि चोट पर उन्हें एक हिन्दू धर्मी और मुसलमान विद्वेषी, गौ-ब्राह्मणों के रक्षक शासक के रूप में ही पेश करते है।

ऐसे समय में जबकि देश में धार्मिक कट्टरता का माहौल गरमा रहा है शिवाजी जैसै शासकों के चरित्र को सही रंग में पेश करना और उसका सकारात्मक विश्लेषण आवश्यक है।

इसी आवश्यकता को पूरा करती है यह पुस्तिका।

मूल्य : 40 रुपया

ISBN 81-86869-28-X

शिवाजी कौन थे ?

गोविन्द पानसरे

Scanned with CamScanner

शिवाजी कौन थे?

गोविन्द पानसरे

लोकवाङ्मय गृह

Scanned with CamScanner

ISBN 81-86869-28-X

मूल्य : 40 रुपया

ISBN 81-86869-28-X

प्रथम संस्करण : अगस्त 1991, पीपल्स पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
द्वितीय संस्करण : अगस्त 2004
तृतीय संस्करण : सितम्बर 2015 (लोकवाङ्मय गृह प्रकाशन)
मूल मराठी से अनुवाद : केशव महादेव सावरकर

मूल © लेखकाधीन

मूल्य : 40 रुपया

लोकवाङ्मय गृह प्रकाशन : भूपेश गुप्ता भवन, 85, सयानी रोड,
प्रभादेवी, मुंबई - 400 025 द्वारा प्रकाशित

SHIVAJI KAUN THE? BY GOVIND PANSARE Rs. 40

मराठी संस्करण की भूमिका

'हम भारतीय' नामक कोल्हापुर स्थित जन आन्दोलन के तत्वावधान में 11 मई 1987 को 'शिवाजी के काल की प्रामाणिकता' विषय पर मेरा भाषण हुआ था। सभा की अध्यक्षता समाजवादी प्रबोधिनी के महासचिव प्रो. सुभाष पाटील ने की। 'हम भारतीय' नाम से अभिव्यक्त विचारधारा और व्यवहार के प्रति समर्पित शहर के बहुत से कार्यकर्ता वहां उपस्थित थे। भाषण ठीक रहा।

उस भाषण को रिकार्ड कर लिया गया और ए.आई.एस.एफ. तथा ए.आई.वाई.एफ. के कार्यकर्ताओं ने उसका जिले भर में तथा जिले के बाहर भी प्रसार किया।

तत्पश्चात इस विषय पर मैं बहुत से स्थानों पर बोलता रहा हूं। इस भाषण के महत्व और उसकी सारगर्भित उपयोगिता को सभी महसूस कर रहे थे, अतः भाषण को लिपिबद्ध किया गया। प्रकाशन के लिए इसे चुस्त-दुरुस्त प्रो. अशोक चौसालकर जी ने बनाया और उसे तथ्यों से सज्जित किया।

इस बीच कई जगह मेरे भाषण होते रहे। भाषण समाप्ति पर कार्यकर्तागण टीका-टिप्पणी करते, संशोधन प्रस्तुत करते और सामग्री बढ़ाते रहे। मैं भी इस पर और अध्ययन करता रहा। फलस्वरूप, मूल भाषण की दिशा मजबूत हुई, परन्तु विस्तार बढ़ा, विषय समृद्ध हुआ और मैंने इसे दोबारा लिख डाला। मुझे भाषण देने की जैसी आदत है, वैसी लिखने की नही। यह छोटी सी पुस्तिका पुरी करने में भी मुझे बहुत अधिक समय लगा। और यदि समाजवादी प्रबोधिनी के दुसरे सचिव श्री बाल पोतदार मेरे पीछे न पड़े रहते तो और भी अधिक समय लग जाता।

Scanned with CamScanner

शिवाजी महाराज का तो नहीं, परन्तु आगामी शिवाजी जयंती का डंडा तो सिर पर था ही। इस साल की शिवाजी जयंती के पूर्व ही पुस्तिका के प्रकाशन के उद्देश्य से सभी कुछ जल्दी-जल्दी में किया गया।

पुस्तिका में मेरी तरफ से नाम मात्र का भी 'शोध' नहीं है। पूर्व में अन्यान्य लोगों द्वारा जो कुछ उद्धृत किया गया है, पुस्तिका उन्हीं की ऋणी है; यानी कि तफसील और संदर्भ औरों के है, मेरी तो केवल प्रस्तुति है।

गोविन्द पानसरे

17, आयडीयल सोसायटी
सागरमाल, कोल्हापुर

10/4/1988

तीसरे मराठी संस्करण की प्रस्तावना

11 मई 1987 को मैंने जो भाषण दिया था, उसे पुस्तक रूप देने में मुझे 11 माह लग गये। इस पुस्तक का प्रथम संस्करण प्रेस में अप्रैल 1988 के प्रारंभ में पहुंचा। प्रथम संस्करण की प्रस्तावना मैंने 10 अप्रैल 1988 को लिखी। पुस्तक तैयार होने में 11 माह लगे परन्तु छपने के पश्चात प्रथम संस्करण की 3000 प्रतियां 15 मई 1988 से पहले यानी एक माह के अन्दर ही समाप्त हो गयीं।

प्रथम संस्करण में छपाई के अनगिनत और असह्य दोष थे। उन्हें कम करने का प्रयास कर तथा मामुली सुधार के बाद मई 1988 में ही 3000 प्रतियों का द्वितीय संस्करण निकाला गया। यह द्वितीय संस्करण भी 15 अगस्त 1988 से पहले ही खत्म हो गया और तृतीय संस्करण निकालने का निर्णय लिया गया।

इस बीच, इस विषय पर मैंने 25-30 स्थानों पर भाषण दिये। नागपुर में तो वहां के सबसे बड़े धनवटे रंगमंदिर में, प्रवेश शुल्क के साथ दो दिन दो भाषण हुए। यवतमाल में स्थानीय शिवसेना ने भाषण बन्द कराने का अशोभनीय प्रयास भी किया।

प्रत्येक भाषण के बाद मैं कुछ न कुछ सीखता रहा। श्रोतागण प्रश्न पुछते, नयी बातें बताते, संदर्भ पुछते।

महाराष्ट्र से अनेक लोगों के पत्र मुझे मिले। अधिकतर प्रशंसा के, तो कुछ सूचनाएं प्रेषित करने वाले। उनका भी उपयोग पुस्तिका में किया गया है।

पुस्तक लेखन की सभी अवस्थाओं में इसका सूक्ष्मतम निरीक्षण करने वाले,

Scanned with CamScanner

डॉ. अशोक चौसालकर अपने काम में पूर्णतया दक्ष है। उन्हें भी अनेक नयी सूचनाएं मिली थीं। उन्होंने पुनः उसमें इजाफा किया। सच कहा जाय तो पुस्तक में उनका श्रम लगभग सह-लेखक का है। मेरे एक ज्येष्ठ सहयोगी, प्राचार्य ए. ए. पाटिल जी ने अपनी टिप्पणियाँ देकर मेरा मार्गदर्शन किया। सांगली-कोल्हापुर 'केसरी' के संपादक एवं मेरे परम मित्र श्री वासुदेव कुलकर्णी द्वारा किये गये सुधार और सूचनाएं महत्वपूर्ण थीं।

इस पुस्तिका के प्रथम संस्करण के बाद उसी साल 'शेतकरी संगठन' के नेता शरद जोशी, अनिल गोरे तथा राजीव बसगेकर की 'किसानों का राजा शिवाजी' पुस्तक प्रकाशित हुई और उस पुस्तक को काफी प्रसिद्धि मिली। इस पुस्तक ने भी मुझे नयी जानकारियाँ प्रदान की। मैंने स्वयं भी थोड़ा-बहुत अध्ययन किया।

इस पृष्ठभूमि में कुछ संवर्धन के साथ यह तीसरा संस्करण प्रकाशित हो रहा है। संवर्धन और बेहतर छपाई के कारण यह संस्करण पूर्व-प्रकाशित संस्करणों की तुलना में यदि बहुत अच्छा न भी बन पड़ा हो, तो भी ठीक-ठाक छपा प्रतीत होता है।

पुस्तक के अन्त में शिवाजी महाराज के तीन पत्र परिशिष्ट के रूप में सम्मिलित किये गये है। अध्ययनकर्ताओं के लिए वह उपयोगी रहेंगे। ये पुस्तिका में प्रस्तुत सामग्री को समझने में भी उपयोगी होंगे।

और एक बात का उल्लेख करना जरूरी है, वह है भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के केन्द्रीय सचिवमण्डल के सदस्य कॉमरेड ए. बी. बर्धन द्वारा की गयी प्रशंसा। मेरा आज तक का अनुभव है कि उनसे प्रशंसा पाना कुल मिलाकर कठिन काम है। मैं जानता हूं कि खुले रूप में उनको धन्यवाद दिया तो वह नाराज होंगे, फिर भी मैं उनका बहुत आभारी हूं।

पुस्तक जितनी तेजी से बिकी और उसकी जो सराहना हुई, मेरा विश्वास है कि मेरा श्रम नहीं, बल्कि विषय का महत्व और जिस समय पुस्तक प्रकाशित हुई उस समय इस विषय की महत्ता ही इसका प्रमुख कारण है।

17, आयडीयल सोसायटी
सागरमाल, कोल्हापुर

गोविन्द पानसरे
20 सितम्बर 1988

1. अनूठे राजा शिवाजी

देखा जाये तो छत्रपति शिवाजी महाराज पर आज तक बहुत कुछ लिखा गया है। कहानियाँ, उपन्यास, नाटक, नौटंकी, गीत, लोकगीत, इतिहास, चरित्र-चित्रण आदि साहित्य की जितनी भी विधाए हैं, उन सभी में शिवाजी और शिवाजी काल को अनेक बार विषय बनाया गया है। उन पर फिल्में भी बनीं, बहुत-से भाषण भी हुए और हो रहे हैं। परन्तु इस सब के बाद भी शिवाजी के काल, शिवाजी महाराज और उनके कार्यों की जो छवि सामान्य जनमानस में निर्मित हुई है, उसे ईमानदारी के साथ न्यायसंगत इतिहास की छवि नहीं कहा जा सकता।

लोकतंत्र में राजा की प्रशंसा!

यह वास्तविकता है कि सामन्तशाही और राजतंत्र बहिष्कृत समाज व्यवस्थाएं हैं। शिवाजी का काल सामन्ती युग था और शिवाजी स्वयं भी सामन्ती दौर के ही एक राजा थे। विश्व और हमारे देश ने राजतंत्र को त्याग दिया, राजे-रजवाड़ों की समाप्ति के लिए संघर्ष हुए और यह सब उचित ही था। यह भी उचित ही था कि राजतंत्र को नेस्तनाबूत कर उसके विकल्प के रूप में लोकतंत्र को अपनाया गया। शिवाजी द्वारा स्थापित राज्य का शिवाजी के पश्चात जो हाल हुआ उससे भी यही सिद्ध होता है कि राजतंत्र स्वीकार्य एवं कायम रखने योग्य समाज व्यवस्था नहीं थी। विकसित अंग्रेजी पूंजीवाद और साम्राज्यवाद के समक्ष भारतीय सामन्तशाही और राजतंत्र अपना अस्तित्व कायम नहीं रख सके। इससे पुनः यह बात स्पष्ट होती है कि सामन्तशाही और राजतंत्र त्याज्य समाज व्यवस्था थी। परन्तु प्रश्न है कि आधुनिक जनतंत्र में एक राजा की वाहवाही क्यों की जाती है? उस राजा के विचार, कार्यकलाप, आचार-व्यवहार

Scanned with CamScanner

तथा चरित्र में ऐसा क्या है जिसके कारण जनतंत्र में भी उनका स्मरण उत्साह का संचार करता है?

राजा तो अनेक हुए, परन्तु उन सभी राजाओं को इस प्रकार याद नहीं किया जाता। उन राजाओं की जयन्ती अथवा पुण्यतिथि पर समारोह आयोजित नहीं किये जाते। उन राजाओं के, यदि कोई उत्तराधिकारी जीवित हों, तो संभव है, वे ऐसा करते हों। अपवादस्वरूप, किसी राज्य के, किसी प्रदेश के कुछ निवासी, ऐसा करते हों, परन्तु शिवाजी की जयंती जितने विस्तृत क्षेत्र में और जितने अधिक धूमधाम से तथा जिस उत्साह, आशा और जोश के साथ मनायी जाती है वैसी अन्य किसी राजा की नहीं, क्यों? आखिर अन्य राजाओं की तुलना में इस राजा में ऐसी क्या विशेषता थी?

शिवाजी के काल में या उसके आसपास हुए अन्य राजाओं की तुलना में शिवाजी में ऐसी क्या विशेषता थी, यह बात साफ हो जाने पर शिवाजी काल और शिवाजी के चरित्र को सही ढंग से समझा जा सकता है।

राज्य संस्थापक

पहली बात तो यह है कि शिवाजी किसी के द्वारा कायम राज्य के उत्तराधिकारी के रूप में सिंहासन पर नहीं बैठे थे। उत्तराधिकार में कईयों को राजा का पद प्राप्त हुआ। उसमें प्रशंसनीय कुछ नहीं। शिवाजी ने तो स्वयं राज्य का निर्माण किया। वह राज्य के संस्थापक थे। राज्य का निर्माण करना न तो सरल कार्य था, न है। शिवाजी ने वही कठिन कार्य किया। दुसरों द्वारा स्थापित राज्य पर बैठना, और अपने बलबूते पर राज्य का निर्माण करना, इन दोनों में भारी अन्तर होता है।

शिवाजी ने जिस समय राज्य का निर्माण किया उस वक्त ऐसा विचार भी किसी के मन में नहीं आया था। अन्य लोग इस या उस दरबार की ईमानदारी के साथ सेवा करना, उसके मन मुताबिक व्यवहार करना, उसके लिए हीनता स्वीकार करना और एन-केन-प्रकारेण इनाम प्राप्त करना, जागीरें प्राप्त करना—इसी में जीवन की सार्थकता अनुभव करते थे। ऐसे युग में शिवाजी ने राज्य प्रस्थापना का ध्येय रखा, और उसे कार्यरूप दिया।

परन्तु, शिवाजी ही एकमात्र संस्थापक राजा नहीं थे। कुछ दूसरे ऐसे राजा भी हुए लेकिन उन्हें आम जनता से शिवाजी की तरह का सम्मान नहीं मिला।

'अपना कर्तव्य, अपना शासन'

शिवाजी महाराज के कार्य और शासन की अन्य राजाओं के कार्य और शासन से क्या भिन्नता थी? मेरी राय में शिवाजी का शासन आम जनता को, प्रजा को बेहद प्रिय था और यही वह सुस्पष्ट भिन्नता है। वास्तव में कोई शासन भला है या बुरा इसका निर्णय करने की सर्वोत्तम कसोटी क्या है? जिस राज्य की प्रजा—सामान्य प्रजा, बहुसंख्यक प्रजा, बहुजन—यह अनुभव करती है कि "यह राज्य मेरा अपना है!" वही राज्य उत्कृष्ट माना जाता है।

हम लोकतांत्रिक राज्य में रहते हैं। विश्व के अनेक देशों में हमारे जैसा ही लोकतंत्र है। इन लोकतांत्रिक देशों की प्रजा क्या इन प्रशासकों को अपना समझती है? जहां तक मैं समझता हूं उसका तर्कसंगत उत्तर 'नहीं' में होगा। जनता द्वारा चुनी जाने के बाद भी, वर्तमान लोकतांत्रिक सरकारें तथा उन राज्यों में चल रहा कामकाज जनता को शायद अपना प्रतीत नहीं होता।

वर्तमान लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था का निर्माण जनता के बीच से हुआ परन्तु वह जनता से निरन्तर दूर होती जा रही है।

इसका मतलब यह नहीं कि वर्तमान तथाकथित लोकतंत्र की तुलना में शिवाजी के काल में सामन्तशाही अधिक विकसित थी। शिवाजी युग और आज के युग में 350 साल का अन्तर है। आज सामन्तशाही तो अनुपयुक्त है ही, परन्तु वर्तमान में जो लोकतंत्र विद्यमान है, वह भी जन सामान्य की दृष्टि से उपयुक्त नहीं रहा।

बलिदान की प्रेरणा

शिवाजी जो भी कार्य करते हैं वह हमारा अपना है—उस युग की जनता ऐसा ही अनुभव करती थी। इसके कई उदाहरण हैं। भारी-भरकम फौज के साथ सिद्दी जौहर और फजल खान ने पन्हालगढ़ (किले) को घेर लिया था। महीनों गुजर गये परन्तु घेरेबन्दी में ढील नहीं आयी। सिद्दी हिलाल के सहयोग से, नेताजी पालकर द्वारा घेराबन्दी पर किया हुआ हमला नाकाम हुआ। छत्रपति के सेनानायक को हार मान कर भाग जाना पड़ा। अपने पुत्र की रक्षा के लिए गया हुआ ईमानदार, सिद्दी हिलाल शत्रुओं के हत्थे चढ़ गया। घेराबन्दी में जकड़े गये राजा शिवाजी को छुटकारा पाने को कोई रास्ता नहीं मिल रहा था। ऐसी स्थिती में, घेराबन्दी में हल्की सी दरार ढूंढ कर, चुपचाप विशाल गढ़ निकल जाने की योजना बनायी गयी। इस योजना का एक हिस्सा था,

Scanned with CamScanner

किसी को नकली शिवाजी बनाना। पालकी में बैठा हुआ नकली शिवाजी शत्रु के हत्थे चढ़ गया। और जब तक सिद्दी जौहर और उसके साथी असलियत जान पाते, तब तक शिवाजी को दूर निकल जाने का मौका मिल गया।

नकली शिवाजी बना था एक सामान्य गरीब व्यक्ति, शिवा नाई। इस शिवा नाई को पता था कि वह पकड़ लिया जायगा। पकड़े जाने पर मौत निश्चित थी, तो भी वह जोखिम उठाने को तैयार हुआ—वह पकड़ा गया, और हंसते-हंसते शत्रु की तलवार का शिकार बन गया।

जानते-बुझते मौत को गले लगाने वाला शिवा नाई किसी जागीर के लालच में नहीं गया था। शिवाजी को बचाने के लिए खुद उनकी जगह बैठने की जिद और उसका संकल्प था। इसके लिए वह अपनी जान देने को भी तैयार हो गया था। शिवाजी को हर हाल में जीवित रहना चाहिए क्योंकि वे जो कुछ कर रहे हैं वह हमारा कार्य है और वे समस्त प्रजा के लिए कर रहे हैं—शिवा नाई का यह अडिग विश्वास था।

ऐसा विश्वास रखने वाला शिवा नाई अकेला नहीं था।

पन्हाल गढ़ की घेराबन्दी से महाराज निकल भागे। सिद्दी जौहर चौकन्ना हो गया और तेजी से उनका पीछा शुरू किया। विशाल गढ़ पहुंचने से पहले ही वह उन्हें धर दबोचता तो उनकी खैर नहीं थी, परन्तु रास्ते में घोड़ादर्रा था, और वह घोड़ादर्रा रोक कर मुट्ठी भर साथियों के साथ (मावले*) बाजी प्रभु देशपांडे डटा हुआ था। दर्रे में जीवनाहुति देने के लिए वह और उसके संगी-साथी तैयार थे ताकि महाराज को विशाल गढ़ पहुंचने का अवसर मिल जाय। अन्त में हुआ भी वही। बाजी प्रभु मारा गया, कई और साथी अपनी जान से हाथ धो बैठे। इतिहास उनके नाम तक नहीं जानता।

बाजी प्रभु और वे मुट्ठी भर साथी क्यों लड़ें? वही भावना! हम मर जायें तो कोई गम नहीं, परन्तु प्रारंभ हुए कार्य को पूरा करने के लिए शिवाजी को जीवित रहना ही चाहिए। वह कार्य ऐसा था कि उसके लिए हंसते-हंसते आत्म बलिदान किया जा सकता था—ऐसा उनका विश्वास था।

ऐसे कई उदाहरण इतिहास में दर्ज हैं।

---

* मराठे सिपाही, जो मूलतः खेत मजदूर और श्रमजीवी किसानों के बेटे थे। कड़कड़ाती धूप में काम करने के कारण जिनकी रंगत काली पड़ जाती थी।

महाराज को शहंशाह औरंगजेब के विश्वास प्राप्त सरदार, मिर्जाराजे जयसिंह के समक्ष अपनी पराजय स्वीकार करनी पड़ी। अपमानजनक समझौता स्वीकार करके आगरा जाना पड़ा। आगरे के बंदीगृह से छुटकारे का कोई मार्ग नहीं मिल रहा था। दोबारा युक्ति लगायी गई और महाराज नौ दो ग्यारह हो लिये। फरार होते समय महाराज के बिस्तर पर एक व्यक्ति शिवाजी का प्रतिरूप बन कर सोता रहा और दूसरा उसके पांव दबाता रहा। फरार होने के लिए अवसर मिले, तिकड़म खुलने में देरी लगे, और राजा को दूर निकल जाने के लिए अधिक-से-अधिक समय मिल सके—ऐसी योजना बनायी गयी थी।

मृत्यु का सामना करने के लिए पीछे ठहरने वाले थे, मदारी मेहतर और हिरोजी फरजंद। देर-सवेर योजना खुलने और पकड़े जाने पर बेमौत मारे जाने की, क्या मदारी मेहतर और हिरोजी फरजंद को जानकारी नहीं थी? मौत को गले लगाकर बलिदान होने के लिए वे दोनों क्यों तैयार हुए? जवाब वही—शिवाजी द्वारा प्रारंभ किया गया कार्य बहुमूल्य है, उसे पूरा होना ही चाहिए, राजा को जीवित रहना ही चाहिए; हमारी जीवन लीला समाप्त भी हो जाये तो कोई गम नहीं।

शिवाजी ने जो भावना जनता में जागृत की थी, वह अन्य राजाओं के लिए संभव नहीं था। दूसरे राजाओं के लिए अपनी जान देने वाले नहीं थे, ऐसा नहीं कहा जा सकता। युद्धों में बहुत से लोग कालकवलित हो गये। परन्तु उनका युद्ध करना, अधिकांशतः वीरता दिखाकर जागीरें और इनाम प्राप्त करने के लिए था। किसी उदात्त कार्य हेतु नहीं!

विशेष महत्वपूर्ण बात यह है कि शिवाजी के ध्येय में लड़ाकू सैनिक तो हिस्सेदार थे ही, साथ ही सामान्य प्रजा भी हर तरह सहयोगी थी। जब राजा के कार्य में प्रजा मन से हिस्सा लेती है, तब वह कार्य सफल होता ही है। सच कहा जाये तो, वह कार्य राजा का नहीं अपितु प्रजा का होता है, इसीलिए सफल होता है।

स्वाधीन शासन में प्रजा की हिस्सेदारी के ऐतिहासिक सत्य को एक प्रतिभा सम्पन्न कवि ने सरल और सटीक भाषा में प्रस्तुत अपनी कविता में इस तरह उतारा है—

Scanned with CamScanner

खबरदार, यदि एड़ लगा कर बढ़ना हो आगे
तिल-तिल टुकड़े कर डालूंगा, चिन्दी से धागे-धागे

कवि एक छोटी सी घटना का वर्णन करता है। उथल-पुथल मची है। फौजी सिपाही को तो छोड़िये, खेत में हल चलाने वाला सीधासाधा किसान भी चौकन्ना है। किसके फौजी कहां जा रहे हैं, इस पर उसकी नजर है। राज्य के कार्य में धोखाधड़ी करने वाला कोई मिल जाये तो उसे ऐसा करने से रोका जाना चाहिए यह भावना चहुं ओर व्याप्त है। खेत की मेड़ से चार घुड़सवार आगे बढ़ना चाहते हैं। एक किसान का दस-बारह साल का सुकुमार सा बच्चा दृढ़ता से उन्हें रोकता है, और कहता है "खबरदार! आगे बढ़ोगे तो टुकड़े कर दूंगा!! तुम कौन हो? कहां जा रहे हो?" आदि आदि! यह नन्हा सा बच्चा शस्त्रों से सज्जित घुड़सवारों को डांट पिलाता है। वह भयभीत नहीं। वह सोचता है कि उसे भी ऐसा करना चाहिए। यह अपना काम है। शिवाजी राजा जो कुछ भला कार्य कर रहे हैं, उसमें हिस्सा लेना चाहिए। आगे कवि कहता है कि हालांकि यह नन्हा सा बच्चा जिन घुड़सवारों को डांट फटकार पिला रहा था उनमें स्वयं राजा शिवाजी भी थे। उस बच्चे ने शिवाजी को कभी देखा नहीं था। परन्तु वह शिवाजी के कार्य में सहयोग देना चाहता था और इसीलिए खतरा उठा रहा था।

अपने शासन काल में शिवाजी अपने सभी सहयोगियों, फौजियों और प्रजा में यह भावना भर सके और बलिदान के लिए उन्हें तैयार कर सके, यही उनकी विशेषता है।

असाधारण पराक्रम असामान्य कार्य सिद्धि हेतु होने वाले युद्धों में ही देखे जाते हैं। सम्पत्ति के लालच में जो लड़ते और मरते हैं उनका लेखा-जोखा रखने की, इतिहास आवश्यकता नहीं समझता।

युद्ध में अनेक बार अकिंचन लोग पराक्रम का डंका बजाते हैं। युद्धोन्माद में मृत्यु भी स्वीकार करते हैं। जागीरें प्राप्त करने और प्राप्त जागीरों की रक्षा के लिए भी पराक्रम किये गये हैं।

परन्तु बिना किसी लोभ लालच के, जानते-बूझते मृत्यु को गले लगाते हुए की जाने वाली बहादुरी की बात ही कुछ और होती है।

यह निर्विवाद है कि शिवाजी के सहयोगी और उनकी प्रजा शिवाजी के कार्य में तन-मन-धन से हाथ बटाती थी। शिवाजी की प्रजा उनके कार्य और

शासन को अपना समझती थी। इसमें शक की कोई गुंजाइश नहीं।

परन्तु ऐसा क्यों था? शिवाजी ने ऐसा क्या किया कि प्रजा ने उनके द्वारा प्रारंभ कार्य को अपना माना? प्रश्न तो यह है कि उस दौर के अथवा उसके पहले या बाद के युग में अन्य राजाओं को प्रजा का वह विश्वास क्यों नहीं मिला जो शिवाजी को मिला?

अन्य राजाओं का प्रजा के साथ बर्ताव और शिवाजी महाराज का प्रजा के साथ बर्ताव इन दोनों में जो अन्तर था, उसी में इस प्रश्न का उत्तर निहित है।

जागीरें-जमींदारी-मालगुजारी और ग्राम सभाएं

उस युग की सामान्य जनता को इस बात से कुछ लेना-देना नहीं था कि कौन राजा आया, कौन गया। किसी भी राजा के आने या जाने से सामान्य जनता को कोई फर्क नहीं पड़ता था।

गांव लगभग आत्मनिर्भर थे। ग्राम सभा का प्रशासन आत्मनिर्भर होता था। पटेल, पटवारी, अहलकार ग्राम सभा चलाते और उसका संचालन करते थे। शासन में परिवर्तनों के बाद भी ग्राम सभा में अन्तर नहीं आता था। मालगुजार बेहिसाब वसूली करते थे। प्रजा पर अन्याय करते थे, उनके विरुद्ध कोई सुनवाई होती नहीं थी। इसलिए इसकी उम्मीद भी कोई नहीं रखता था, शासन में परिवर्तन के बाद भी नहीं। पटवारी, पटेल, मालगुजार, क्षेत्र प्रमुख और जागीरदार कायम रहते थे। वे तुरन्त अपनी निष्ठा बदल देते। जिसकी विजय होती, जिसका शासन रहता उसी के प्रति वे निष्ठा रखते। निजी ठेकेदारियों को सलामत रखते, प्रजा पर अत्याचार करते। वसूलियां करते और राजा का हिस्सा पहुंचा देते। जब तक प्रजा पर जोर-जबर्दस्ती होती रही तब तक प्रजा से वसूल किया गया रुपया और सम्पत्ति मालगुजार किस राजा को पहुंचाता और कितना पहुंचाता इससे आम आदमी को कोई सरोकार नहीं था।

प्रजा की राय थी कि सभी राजा लुटेरे या लुटेरों के सरदार होते हैं अतः वह राजा राजा के बीच अन्तर नहीं करती थी। इस सम्बन्ध में इतिहासज्ञ श्री राजवाड़े की पुस्तक 'महिकावत की बखर' की प्रस्तावना में कहा गया है कि "विगत तीन हजार सालों में हिन्दुस्तान में जो स्थानीय और विदेशी सरकारें रह चुकी हैं वह सब एक प्रकार से पेटू-चोरों की थी और सरकार का मतलब था उठाईगीर चोरों की टोली। हिन्दुस्तानी देहातियों की यह अन्तरंग प्रामाणिक समझ है।"

Scanned with CamScanner

विश्व इतिहास अध्येता, मार्क्स ने भी अपर्याप्त साधन-सुविधा के बावजूद ऐसा ही निष्कर्ष निकाला था। मार्क्स ने अपने घनिष्ठ सहयोगी एंगेल्स को 14 जून 1853 को एक पत्र लिखा था। उस पत्र में तत्कालीन भारतीय युद्धों, देहातों और परिवर्तनशील राजाओं के सम्बन्ध में मार्क्स लिखतें हैं–

"जबकि कभी-कभी देहातों को युद्ध, अकाल, महामारी का शिकार होना पड़ा तब भी वही नाम, सरहदें, वही हित सम्बन्ध और वही परिवार सैकड़ों साल से वही परंपरा संभाल कर रखे हुए हैं। शासन समाप्ति या विभाजन की आंच, वे निवासी कभी अपने ऊपर महसूस नहीं करते। जब तक देहात अविभाजित रहता है तब तक वह किस सत्ता के अधीन हुआ, या किस साम्राज्य के अन्तर्गत आया, इसकी फिक्र वे नहीं करते। उनकी आन्तरिक व्यवस्था विचलित नहीं होती।" आन्तरिक व्यवस्था में राजा का दखल नहीं था।

राजा और प्रजा के बीच सम्बन्ध नहीं था। राजा के कार्य से प्रजा के जीवन पर कोई अन्तर नहीं पड़ता था। शासकीय परिवर्तन हुआ तो भी पुरानी शासन पद्धति ही कायम रहती और प्रजा से लूटखसोट जारी रहती। मालगुजार प्रजा पर अत्याचार करता, उन्हें लूटता, तो भी राजा लापरवाह रहता। जब तक मालगुजार राजा को वसूली देता रहता तब तक तो प्रजा के साथ उसके व्यवहार से राजा को कोई मतलब नहीं रहता था।

शिवाजी का शासन कायम होते ही तुरन्त परिवर्तन होने लगे। राजा और प्रजा में निकट सम्बन्ध कायम हुए। प्रजा को राजा के दर्शन होने लगे, राजा उनसे मिलने लगा, उनकी खैरियत पूछने लगा, उन पर अत्याचार न हो इस बात का ध्यान रखने लगा। उनको राहत देने के लिए शासन-संचालन करने लगा। जागीरदार, प्रदेश प्रमुख, मालगुजार, पटेल पटवारियों की बेलगाम हरकतों पर अंकुश लगाने लगा। शिवाजी लोंगों को समझाने लगे कि मालगुजार शासन के मालिक नहीं, अपितु कर्मचारी हैं। और जनता स्वयं यह अनुभव करने लगी। राजा मालगुजारों के व्यवहार को नियंत्रित करने लगा। उनके आचरण के सम्बन्ध में नियम बनाये गये।[1]

यदि मालगुजार राजा के नियम विरुद्ध व्यवहार करे, प्रजा पर जुल्म और अत्याचार करे तो उसके विरुद्ध फरियाद करने की जनता में हिम्मत पैदा हुई। जनता से मिलने वाली शिकायतों की जांच पड़ताल होने लगी और अत्याचारी मालगुजारों को कठोर सजाएं मिलने लगीं।

शिवाजी की प्रजा के लिए यह सब कुछ नया था। वह अंतर महसूस करने लगी थी और राजा के कार्य को देखने-समझने का उसका दृष्टिकोण बदल रहा था। राजा और राज्य के कार्य के प्रति वह अपनापन अनुभव करने लगी थी।

❑❑❑

Scanned with CamScanner

2. प्रजा के दुःख-दर्द को समझनेवाला राजा

पुणे परगना शिवाजी के पिता श्री शहाजी की जागीर थी। दादाजी कोंडदेव की देखरेख में अत्यल्प आयु में ही शिवाजी द्वारा परगने का कार्यभार संभालने की व्यवस्था की गई।

यह परगना मुगल और आदिलशाही के बीच का सीमा प्रदेश था। इस क्षेत्र से बार-बार एक दूसरे पर हमले होते रहते थे। नगर और गांव जलकर राख के ढेर बन जाते, बस्तियां उजड़ जातीं। इसका उल्लेख 'सभासद बखर' नामक प्रसिद्ध पुस्तक में है। बस्तियां उजड़ गयी थीं और जंगल फैल गये थे जिसमें लोमड़ियां, सियार और अन्य जंगली जानवर भर गये थे।

कृषि और कृषकों की ऐसी दीनहीन अवस्था की पृष्ठभूमि में शिवाजी और दादाजी कोंडदेव क्षेत्र की व्यवस्था देखने लगे।

उजाड़ गांवों को शिवाजी ने फिर से बसाया। जमीनें जोतने वालों को कृषि औजार और बीज देकर दोबारा कृषि करने के लिए प्रोत्साहित किया। जोत के अंतर्गत लाई गई गई जमीनों का लगान भी शुरू के चार-पांच साल कम रखा गया।[2]

मनमर्जी की वसूली समाप्त कर जमीनों का नाप-जोख लिया गया। नाप-जोख के आधार पर लगान सुनिश्चित किया गया। केवल निर्धारित लगान ही उगाहने का आदेश दिया गया और उसे अमल में भी लाया गया।

अकाल में लगान माफ कर दिया जाता। पैदावार ही नहीं होगी तो कृषक देगा कहां से?—इस समझ पर कायम था शिवाजी का व्यवहार। इसके विपरीत, अकाल में किसानों को सहायता दी जातीं।

ऐसी परम्परा चली आ रही थी कि महलों के मुंहलगे और गांवों के मुखिया ही पंडित, पुजारी, पटेल, पटवारी, खातेदार, मिरासी, जमींदार आदि होते। उनके अधिकार क्षेत्र में महल और गांव आते थे और प्रजा से लगान वसूली उनके जिम्मे रहती थी। शासकीय अधिकारी प्रजा से सीधे-सीधे वसूली प्राप्त नहीं करते थे। इसकी पूरी जिम्मेदारी मुखियाओं आदि तथा जमींदारों पर थी। फलस्वरूप समस्त प्रजा इन मिरासियों के कब्जे में थी। प्रजा से वे मनमर्जी का महसूल झपट लेते। यदि किसी गांव से शासकीय (बकाया) दो सौ या तीन सौ रुपये लेना होता तो ये मिरासी उस गांव की प्रजा से दो हजार या तीन हजार रुपये वसूली उगाहते थे। और इस प्रकार, तलीरामगार* अपने नशे-पानी के लिए प्रजा को अकारण सताते, साथ ही शासन को भी नुकसान पहुंचाते। वे अपने गांवों में हवेली, बाखल गढ़ी आदि बनवा कर, सिपाही, चौकीदार और बन्दूक-तलवारें रख कर अपनी शक्ति बढ़ाते। उनकी यह गैर-कानूनी हरकतें शासकीय अधिकारियों के कानों तक पहुंची तो वे भी उनसे ज्यादा सरकारी लेनदारी वसूलने लगे। परन्तु कई मुखिया आदि शक्तिशाली जमींदारों के कानों पर जूं नहीं रेंगती। मामला तूल पकड़ने पर लड़ने-भिड़ने की नौबत आ जाती। ऐसी व्यवस्था के फलस्वरूप चौतरफा बदमाशों-लुटरों की रेल-पेल मच गई थी।[3]

ऐसी अवस्था में शिवाजी ने खेतिहर महसूल पर निम्नलिखित प्रकार से नियंत्रण लागू किया—

स्वराज्य के अंतर्गत आने वाली सभी भूमि की नाप-जोख कर उसे जोतने वालों के नाम कर दिया गया जिसका लेखा-जोखा महल प्रमुख के कार्यालय में रखा जाता। जमीन नापने के लिए लकड़ी बनाई जाती थी, वह पांच हाथ-पांच मुट्ठी लम्बी रखी जाती थी। एक हाथ की लम्बाई चौदह तसू रहती। लकड़ी की लम्बाई 82 तसू थी। बीस लकड़ियों का एक बीघा और एक सौ बीस बीघा की एक चावर। यह मान्यता प्राप्त नाप था। प्रत्येक बीघे में कितनी पैदावार होगी यह खड़ी फसल देख कर निश्चित किया जाता। पैदावर के पांच भाग करके तीन भाग उत्पादक कृषक को और दो भाग सरकार को दिए जाने का करार था। सरकारी देनदारी अनाज या नकद रुपयों में होती थी। सूखा आदि विपत्ति में किसानों को खुले हाथों कर्जे दिए जाते। कर्जे की यह रक्कम चार या पांच सालों में वार्षिक किश्त के रूप में प्रतिदेय थी। बगैर जोत की

* तलीराम मराठी के प्रसिद्ध नाटक 'एकच प्याला' का एक चरित्र है जो चौबीसों घंटे शराब में डूबा रहता था।

Scanned with CamScanner

जमीनें, यदि प्रजा को देनी होती और यदि उसके पास ढोर-जानवर न होते तो वे उसे सरकार की ओर दिये जाते, उसे बीज दिये जाते और फसल तक जीवन निर्वाह के लिए अनाज और पैसा दिया जाता। दो-चार साल में उसे वापस लिया जाता। इस प्रकार के करार पर जमीनें दी गयीं और अधिकांश उपजाऊ भूमि जोत के अंतर्गत लायी गयी। पैदावार का अंदाजा लगा कर प्रजा पर कर निर्धारित किया गया। अधिकारियों को कठोर आदेश थे कि किसी पर अत्याचार न हो![4]

ठेकेदारों और जमींदारों की मनमानी पर महाराजा ने रोक लगा दी। जनता से वसूली के काम के लिए सभी स्थानों पर अधिकारियों को नियुक्त किया। भूतपूर्व जमींदार और मिरासी प्रजा को बिल्कुल परेशान न करें, इसलिए उन्हें पूर्व शासन में जितना मिलता था उसी के अनुपात में प्रति वर्ष वेतन देना तय हुआ। वे उसे प्रत्यक्ष रूप में प्रजा से वसूल नहीं कर सकते थे। सरकारी आय का यह निश्चित अंश उन्हें किसी प्रकार की जिम्मेदारी सिर पर न होने पर भी दिया जाता था। इसके लिए उन्हें प्रतिवर्ष स्वीकृति प्राप्त करनी पड़ती थी। फलस्वरूप उन पर पूरा दबाव पड़ा और प्रजा भी उनकी पकड़ से साफ बच गयी। वह आजादी और चैन से रहने लगी। प्रजा को निलामी में जकड़ने वाले, इन मुखियाओं, पण्डों आदि ग्रामाधिकारियों की हवेलियां, बाखले और गढ़ियों के परकोटे (पत्थरों के दीवारों की घेराबंदी) तोड़ डाले गये और आदेश दिया गया कि वह साधारण प्रजा की तरह सीधे-सादे मकान बना कर रहें।[5]

तो फिर किसानों और उनकी खेती के रक्षक राजा के प्रति प्रजा में प्रेम क्यों नहीं उत्पन्न होता? शिवाजी का शासन कायम रहे और फले-फूले प्रजा ऐसा क्यों नहीं सोचती? और फिर ऐसी किसान प्रजा का नाजुक सा बालक "खबरदार! यदि..." क्यों नहीं कहता?

प्रजा राजा के साथ कैसा व्यवहार करती है, यह राजा के प्रजा के प्रति बर्ताव पर निर्भर करता है। राजा प्रजा का एक गुना हित देखता है तो प्रजा राजा का दस गुना हित देखती है। शासन का अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति न मान कर, शासक उसे 'जनता की अमानत' मानते हैं तो जनता उसे अपना शासन मानती है। और इसके विपरीत जनता "कुछ नहीं," "शासन हमारे बाप-दादा से मिली हुई निजी सम्पत्ति है," शासक जब ऐसा सोचता है तो, विश्व इतिहास साक्षी है कि ऐसे राजाओं को उखाड़ फेंका जाता है।

शिवाजी और महिलाओं की प्रतिष्ठा

शिवाजी के चरित्र की कुछ बातें विवाद से परे हैं, इस सम्बंध में किसी के मन में रंचमात्र शंका नहीं है। परन्तु इस बात की महत्ता को सभी ने ठीक से समझा है, यह नहीं कहा जा सकता।

महिलाओं की प्रतिष्ठा के सम्बंध में छत्रपति शिवाजी महाराज का दृष्टिकोण ऐसी ही एक बात है।

शिवाजी महाराज के युग और सामन्तशाही के पूरे के पूरे दौर में महिलाओं की प्रतिष्ठा और विशेषकर, गरीबों की महिलाओं की इज्जत का कोई मूल्य नहीं था। राजे-रजवाड़े और राजकुमारों की बात जाने दीजिए, सरदार, वतनदार जमींदार, मुखिया, पटेल आदि का यह दृष्टिकोण था कि गरीबों की बहू-बेटियां उनकी उपभोग्य वस्तुएं हैं। दिन-दहाड़े उनकी इज्जत लूटी जाती थी, और उनके विरुद्ध कहीं फरियाद की अपेक्षा नहीं थी। न्याय जिनके हाथ में था वही इज्जत लूटते थे। इन लुटेरों को मान-सम्मान और उपाधियां मिलती थीं।

ऐसे युग में, इस विषय पर शिवाजी का दृष्टिकोण बिल्कुल भिन्न था।

रांझा के पटेल का प्रकरण प्रसिद्ध है। ग्राम-प्रमुख पटेल ने गरीब किसान की जान-जवान बेटी का दिन-दहाड़े, सबके सामने, अपहरण किया और उसे अपमानित किया। अपमानित जीवन जीने की अपेक्षा, उसने मौत को ठीक समझा, परिणामस्वरूप उसने आत्महत्या कर ली। सारा गांव दुखी हुआ, परन्तु चुप्पी साधे रहा।[6]

शिवाजी तक यह बात पहुंची। पटेल को पकड़कर पुणे लाया गया और उसके हाथ-पैर तोड़ने की सजा सुनायी गयी। केवल सुनायी नहीं गई, अपितु इस पर अमल भी किया गया और समस्त प्रजा घोर आश्चर्य में डूब गयी। गरीब लड़की की इज्जत के ऐवज में ठेकेदार पटेल को हुई कठोर सजा को देख कर प्रजा शिवाजी पर न्यौछावर हो गई। और प्रजा की प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए शिवाजी जो कार्य कर रहे थे उसकी पूर्ति हेतु मरने-मारने को तैयार हो गई।

जिनके बलबूते पर शासन चलाना है उन ठेकेदारों पर दया-माया न दिखाने के लिए कठोर न्यायनिष्ठा की आवश्यकता थी। शिवाजी के पास वह थी। इसीलिए प्रजा उनके कार्य में सहयोगी थी। आज भी गांव-देहात और शहरों में भी, गरीब प्रजा की बहू-बेटियों पर अत्याचार और बलात्कार होते हैं। परन्तु

Scanned with CamScanner

शिवाजी के उत्तराधिकारी कहलाने वाले, और उठते-बैठते शिवाजी के नाम की माला जपने वाले क्या कर रहे हैं? क्या अत्याचार करने वालों को सजाएं होती हैं? हाथ-पैर तोड़ना तो छोड़िये, क्या मामला न्यायालय में भी पहुंचता है? अत्याचारी जितना बड़ा ठेकेदार, जितना बड़ा धनवान होता है उतनी जल्दी उसकी रिहाई होती है, या फिर उसकी गिरफ्तारी ही नहीं होती।

इसलिए जनतंत्र में भी शिवाजी को याद किया जाता है।

रांझा के पटेल वाली घटना अपवाद नहीं है, ऐसे और भी कई उदाहरण हैं।

सन 1678 में सकूजी गायकवाड नाम के सेनापति ने बेलवाडी किले को घेर लिया। उस किले की किलेदार सावित्री बाई देसाई नाम की एक महिला थी। वह वीरांगना महिला 24 दिन तक लड़ती रही, परन्तु अन्त में सकूजी ने किले पर विजय प्राप्त की और विजयोन्माद में तथा बदले की भावना से, सावित्री बाई से बलात्कार किया। यह समाचार सुन कर शिवाजी क्रोधाग्नि में जल उठे। उन्होंने सकूजी गायकवाड की आंखें निकलवा कर, उसे जीवन भर के लिए कैदखाने में डलवा दिया। अपनी ही सेना के विजयी सेनापति ने शत्रु महिला से बलात्कार किया था इस आधार पर भी कोई दया-माया नहीं दिखायी। कारण, शिवाजी मानते थे कि महिलाओं की प्रतिष्ठा, बिना किसी भेदभाव के, कायम रहनी चाहिए।[7]

कल्याण के सूबेदार की बहू को दरबार में प्रस्तुत किये जाने, उसके सम्बंध में अशोभनीय बातें न बोलकर और उसके साथ दुर्व्यवहार न करके उसे साड़ी-चूड़ी पहना कर वापस भेजने की कहानी, तो कई रचनाओं की विषयवस्तु बनी है। मुसलमान शत्रु की जानजवान और सुन्दर बहू को देख कर, उन्हें अपनी माता का स्मरण हो आया : यदि मेरी माताजी भी इतनी ही सुन्दर होती तो क्या होता? ऐसे उद्गार प्रकट करने के लिए उज्ज्वल चरित्र और स्वस्थ सौंदर्य-बोध चाहिए। वर्तमान टटपूंजिये तथाकथित 'शिवाजी भक्त' ठेकेदारों और राजाओं के सामने यदि कोई सुन्दर महिला आयी होती, तो उन्होंने क्या कहा होता, और क्या किया होता, इसकी कल्पना कीजिए, तब आप शिवाजी के सच्चे और झुठे अनुयायियों में अन्तर कर पायेंगे।

युद्ध में अथवा लूटपाट के समय मुसलमान या हिन्दू महिला के सामने पड़ने पर उन्हें नुकसान नहीं पहुंचाया जाना चाहिए, उन्हें तकलीफ नहीं होनी चाहिए—ऐसे आदेश शिवाजी ने दे रखे थे और उनका पालन होता था।

उस युग में यह आम प्रथा थी कि युद्ध में जाते समय हिन्दू और मुसलमान राजे-रजवाड़े, इनामदार जनानखाने, दास-दासियां, नाचने-गानेवालियां आदि अपने साथ ले जाते थे। दूसरे प्रदेश की माहिलाओं को गुलाम बनाने और उन्हें भ्रष्ट करने का चलन था। ऐसे समय में, यह सख्त निर्देश जारी किया गया कि मुहिम पर कूच करते समय दासियों या नाचने-गानेवालियों को साथ ले जाना मना है। किसी भी महिला को दासी बनाया जाना सहन नहीं किया जायगा।[8]

इक्कीसीवीं शताब्दी के द्वार पर खड़े भारतीय 'प्रगतिशील' और 'न्यायप्रिय' राज्य, महाराष्ट्र में आज भी महिलाओं के साथ बलात्कार हो रहे हैं और उन बलात्कारों को अनदेखा करने वाले, बल्कि बलात्कारियों को शरण देने वाले, शिवाजी के नाम का जयगान करते हैं और अपने आपको शिवाजी का उत्तराधिकारी बताते हैं। सोचिए, यादि आज शिवाजी होते तो वह इन भक्तों के साथ कैसा व्यवहार करते?

शिवाजी और राजकाज की भाषा

भारत में भाषावार राज्यों को कायम हुए 37 साल हो गये। भाषा-आधारित राज्य के रूप में महाराष्ट्र के निर्माण को भी 30 साल हो रहे हैं, परन्तु अभी भी महाराष्ट्र में राज-काज अंग्रेजी में चलता है। जिस उद्देश्य से भाषावार राज्य कायम हुए थे वह उद्देश्य क्या अभी तक प्राप्त हो सका है? 150 साल तक लड़कर, अंग्रेजों को समुद्र पार भगा दिया गया, परन्तु जो साहबी भाषा सर चढ़ी, वह आज तक कायम है। आज भी देशी साहब अंग्रेजी में ही बात करते हैं, और अंग्रेजी बोलने में प्रतिष्ठा मानते हैं। जिसे अंग्रेजी नहीं आती और ठीक से नहीं आती उसे गंवार समझा जाता है।

शिवाजी के काल में राज-काज की भाषा मुख्य रूप में फारसी थी। कोई भी भाषा अच्छी या बुरी नहीं होती, परन्तु लोग फारसी समझते न थे। स्वाभाविक ही है कि समझ में न आने वाली भाषा में राज-काज प्रजा को अपना प्रतीत नहीं होता था। क्या कुछ हो रहा है, यह समझ में नहीं आता था। प्राकृत में काम-काज शुरू किया गया तो लोगों ने उसे हाथों-हाथ अपनाया। शिवाजी के शासन को जनता अपना समझने लगी।

शिवाजी और प्रजा

जिस प्रकार शिवाजी महाराज का प्रजा के प्रति, सामान्य गरीब जनता की

Scanned with CamScanner

बहू-बेटियों के प्रति दृष्टिकोण, समकालीन दूसरों की अपेक्षा भिन्न था, उसी प्रकार प्रजा की सम्पत्ति से सम्बन्धित दृष्टिकोण भी सर्वथा भिन्न था। उस समय यह परिपाटी थी कि प्रजा की सम्पत्ति यानि बलवान द्वारा लूटने योग्य वस्तु। उस समय निरन्तर युद्ध होते रहते। पैदल और घुड़सवार सेना इधर-उधर आती-जाती रहती। यह सेना गांवों से गुजरती या वहां पड़ाव डालती, तो प्रजा की सम्पत्ति का क्या हश्र होता था?

घुड़सवार सेना खड़ी फसल में से तुफानी गति से गुजरती थी। साल भर की मेहनत-पसीने से सींची गयी, कटने के लिए तैयार फसल, देखते ही देखते जमींदोज हो जाती। खेत जिस राज्य में पड़ते उसी राजा की सेना ऐसा करती थी, तो फिर शिकायत किसके पास की जाती और कौन न्याय करता? स्वयं के भाग्य को कोसते हुए चुपचाप रोने-गिड़गिड़ाने के अतिरिक्त दूसरा कोई चारा नहीं था।

सेना को मनमाने आचरण की छूट थी। ऐसे युग में शिवाजी ने सेना को आदेश दिये कि किसी भी मुहिम के दौरान सेना की कोई भी टुकड़ी, किसान खड़ी फसल में से न गुजरे। किसी की फसल का नुकसान सहन नहीं किया जायेगा।

कल्पना कीजिए! खड़ी फसल को बेरहमी से रौंदते जाने वाली, और खड़ी फसल को मिट्टी में मिला देने वाली सेना देखते रहने की आदी प्रजा को सीधे रास्ते से जाने वाली और फसल को नुकसान न पहुंचाने वाली, शिवाजी की सेना देखने को मिली तो उन्हें कैसा प्रतीत हुआ होगा। प्रजा की फसल की देखभाल करने वाले राजा और आज्ञाकारी अनुशासित सेना के प्रति प्रजा ने क्या सोचा होगा? प्रजा ऐसा क्यों न समझती कि यह राजा, यह सेना और यह शासन उनका अपना है?

उस जमाने में दूसरों द्वारा न केवल फसल को नुकसान ही पहुंचाया जाता था, अपितु जोर-जबर्दस्ती भी की जाती थी। सेना और सेनानायक गांव में पड़ाव डालते तो क्या होता था? सेना के घोड़ों के लिए दाना-पानी ग्रामीण प्रजा से वसूला जाता। गांव के लोगों को ही सेना का स्वागत-सत्कार करना पड़ता। गांव के मालगुजार-पटेल या पटवारी उनके पास जो कुछ हो निकाल लाते और पड़ाव डालने वालों के लिए खाने-पीने का प्रबन्ध करते थे। सेना और सेनानायकों को लूट-खसोट की आदत पड़ी हुई थी, ऐसी विपत्तियां प्रजा को सहन करनी पड़ रही थीं, उस समय एक महामानव आता है और आज्ञा देता है—

'प्रजा की सब्जी के डण्ठल तक को हाथ लगाना बर्दाश्त नहीं किया जायेगा। यदि सेना के घोड़ों के लिए दाना-पानी की जरूरत हो तो नकद रकम देकर खरीदा जाना जाहिए।'[9]

"जनता को सेना के कारण तकलीफ नहीं होनी चाहिए।" और केवल आज्ञा ही नहीं देता था वरन उन्हें सख्ती से अमल में लाता। शिवाजी को प्रजा के दुःख की असीम अनुभूति थी, जिसके कारण उन्हें जनता का विश्वास प्राप्त हुआ। आज न तो वैसे सेनानायक हैं, न वैसी घुड़सवार सेना, परन्तु नये सरदार हैं। घुड़सवार सेना न भी हो तो भी मोटारगाड़ियों का काफिला है। मुहिम पर न भी हुए तब भी, आज के नये सरदार मोटरों के काफिले के साथ, 'निरीक्षण' करने और 'जनसम्पर्क' के लिए गांव-गांव पड़ाव डालते हैं। आज इनकी नई टोलियां गांव-गांव में कैसा बर्ताव करती हैं? क्या स्वागत सत्कार में काम आयी मुर्गियों के दाम मालिकों को मिलते हैं? क्या स्वागत-सत्कार का व्यय, पड़ाव डालने वाले सरदार, अपने वेतन और आय में से देते हैं? क्या ग्राम सभा के पटेल, पटवारी और छूटभैये नकद रकम से वस्तुएं खरीदते हैं?

इन सभी के घरों और दफ्तरों में, शिवाजी महाराज की तस्वीर टंगी रहती है और ये शिवाजी महाराज का जयघोष करते नहीं अघाते। शिवाजी से इन्होंने क्या शिक्षा ली है? इनके शिवाजी कैसे हैं, और वास्तव में शिवाजी कैसे थे?

प्रजा की सब्जी के डण्ठल तक को हाथ न लगाने की शिवाजी की आज्ञा के बारे में इन्हें क्या पता नहीं?

स्वाधीनता की सुरक्षा के नाम पर भी, प्रजा को आंच न पहुंचे, इसके प्रति यह राजा बहुत ही चिन्तित दिखाई देता था।

रामचन्द्र पंत अमात्य के 'आज्ञापत्र' में शिवाजी की राजनीति देखने को मिलती है। इस आदेश-पत्र के विभिन्न आदेशों में उनकी सूझ-बूझ के स्पष्ट दर्शन होते हैं। उनके प्रजा-प्रेम, मन की कोमलता और सूक्ष्म दृष्टि के लिए उदाहरणस्वरूप निम्नलिखित आदेश देखिए—

नौसेना खड़ी करने के काम में लकड़ी बहुत महत्वपूर्ण थी। उसके बगैर नौसेना का लंगर डालना मुश्किल था। उस समय जंगल घने थे और लकड़ी भी बहुतायत में उपलब्ध थी, फिर भी यह आदेश!

"स्वाधीन शासन में मौजूद आम-कटहल के वृक्षों की लकड़ी नौसेना के लिए उपयोगी है, परन्तु उन्हें हाथ न लगाने दिया जाये। वजह यह नहीं कि

Scanned with CamScanner

वृक्ष साल दो साल में तैयार होते हैं बल्कि इसलिए कि प्रजा ने उन वृक्षों को लगाने के बाद लम्बे समय तक, अपने बाल-बच्चों की तरह उनकी देखभाल की है और इनको काटने पर क्या उनके दुःख की कोई सीमा होगी? यदि कोई वृक्ष सूखकर ठूंठ बन गया हो तो भी उसके स्वामी को समझा-बुझाकर, उसका मूल्य चुकाकर, उसे संतुष्ट करके ही उसे काटा जाना चाहिए.''[10]

राजवाड़े द्वारा लिखित खण्ड 8 में, स्वयं शिवाजी महाराज के शब्द उद्धृत हैं। चिपलुन के समीप जब घुड़सवारों का पड़ाव पड़ा था तब अधिकारियों के बर्ताव के सम्बन्ध में राजा कहते हैं—

'वर्षाऋतु के लिए जतन से इकट्ठा की गयी घास में यदि भोजन पकाने के लिए जलाये गये चूल्हे से, अलाव अथवा हुक्के-चिलम से आग लगती है और आपाधापी मच जाती है और घुड़साल तबाह होते हैं तो इसका अर्थ यह माना जायेगा कि आप लोगों ने ही घोड़ों को मरवाया।' यह उदाहरण देखिये— 'आपको पैसा दिया जाता है जो चाहिए वह वस्तु कीमत चुका कर बाजार से मंगवायें। यदि ऐसा न करके प्रजा को कष्ट पहुंचाया गया तो प्रजा यही समझेगी कि आपसे तो मुगल भले।'[11]

प्रजा के सम्बन्ध में ऐसा अपनापन उस युग में किसी भी राजा या सामन्त द्वारा नहीं दिखाया गया। प्रजा के प्रति राजा का यह सरोकार स्पृहणीय था। इसीलिए प्रजा की राजा के प्रति निष्ठा निराली थी।

जिस युग में दूसरे राजाओं की सेना, जनता को गुलाम समझती थी। प्रजा की सम्पत्ति की नुकसान पहुंचा कर लूटपाट करती थी; प्रजा की बहू-बेटियों की इज्जत बेरहमी से लूटती थी; उस युग में शिवाजी महाराज की सेना, क्यों प्रजा के साथ इतनी भलमनसाहत के साथ पेश आयी? किस प्रकार इस सेना में यह बदलाव आया? इसका कारण क्या है?

ये प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण हैं।

अकेले शिवाजी महाराज के चरित्र में इस प्रश्न का उत्तर नहीं ढूंढा जा सकता। केवल उनके आदेश ही इस बदलाव का कारण थे, यह कहना भी अपर्याप्त है। अतः इस सेना की संरचना और यह सेना जिस ध्येय के लिए लड़ती थी, उसे भी ठीक से समझना होगा।

किसानों की सेना

उस युग में दूसरे राजाओं की सेना, स्थायी सेना होती थी। युद्ध करना ही उनका पेशा था। आजीविका का साधन था। बारहो मास यह सेना यही काम करती थी। घर-बार से दूर, परिवार और खेत-खलिहानों के कामों से अलग, सेना के सिपाही अपने में ही डूबे रहते थे। उन्हें किसी की परवाह नहीं थी। ऐसे में सिपाहियों की प्रकृति उद्दण्ड हो जाती थी। स्थायी सेना के विवाहित और बाल-बच्चेदार सिपाही प्रजा की परवाह नहीं करते। प्रजा की सम्पत्ति और प्रतिष्ठा की परवाह करने की मानसिकता का उनमें अभाव होता था।

शिवाजी की सेना स्थायी सैनिकों की सेना नहीं थी। कुछ खड़ी सेना थी जरुर, परन्तु अधिकांश सिपाही खेती-बाड़ी का काम करते थे। बाल-बच्चों के साथ रहते और सैनिक का कर्तव्य भी निबाहते थे। दशहरे के दिन सीमा पार के प्रदेशों पर कब्जा करने हेतु निकल पड़ना और अक्षय तृतीया के दिन घर वापस लौटकर खेती-बाड़ी का काम संभालना और बाल-बच्चों के बीच रहना— यह आम परम्परा थी।

खेत-परिवार से इस प्रकार घनिष्ठ सम्बन्ध रखने वाले सिपाही की मानसिकता, दूसरे किसानों के खेतों और सम्पत्ति की सुरक्षा की होती है। दूसरों की बहू-बेटियों का सम्मान करने की होती है। दूसरों के खेत और फसलें देख कर, उन्हें अपनी फसलें याद आती हैं। दूसरों की बहू-बेटियों को देख कर, अपनी बहू-बेटियों का स्मरण हो आता है और वे अत्याचार नहीं करते, नुकसान नहीं पहुंचाते और लूटपाट नहीं करते, किसी की इज्जत नहीं लूटते। कृषि के साथ निकट सम्बन्ध रखने वाला मनुष्य लुटेरा नहीं हो सकता।

अतः यह बात बहुत ही महत्वपूर्ण है कि सेना का सिपाही समाज के किस स्तर से आता है—किस वर्ग से आता है।

इसका एक दूसरा महत्वपूर्ण पहलू भी है।

दूसरे राजाओं और सेनानायकों की सेनाएं लुटेरी थीं। उनका ध्येय भी लूट करना ही होता था। उनका शासन कायम ही था लूट के लिए तो फिर लूट नहीं करते तो और क्या करते? उनका एकमात्र उद्देश्य सैन्य शक्ति के बल पर ठाट करना ही था। वे प्रजा की प्रतिष्ठा और सम्पत्ति की परवाह क्यों करते? शिवाजी के शासन का उद्देश्य, शिवाजी के सैनिक बने किसानों का उद्देश्य लूटना नहीं था, इसके विपरीत लूट को रोकना था। वर्षों से मची हुई लूट का, अन्याय का प्रतिकार करने के लिए कटिबद्ध यह सेना लूटपाट

Scanned with CamScanner

कैसे करती? जो अन्याय के प्रतिकार के लिए कृतसंकल्प होते हैं वे खुद अन्याय नहीं करते।

इसका मतलब यह नहीं कि शिवाजी महाराज की सेना ने कभी भी और कहीं भी लूट नहीं की। उन्होंने दूसरे प्रदेशों में जाकर लूटपाट की थी। सूरत में की गयी लूट के बारे में सब जानते हैं, परन्तु यह लूट आवश्यकता समझ कर, अपरिहार्य जान कर ही की गयी थी। दूसरों की 'इज्जत' को नहीं लूटा गया था।

एक और भी मुद्दा इसमें समाहित है। अन्य राजा सैनिकों को वेतन नहीं, बल्कि वेतन के स्थान पर लूट का एक अंश देते थे। स्वाभाविक है कि सैनिक अधिक से अधिक लूट मचाते। अन्य राजाओं की लूट में से हिस्सा देने की रीति को शिवाजी ने त्याज्य घोषित किया। लूट का पूरा माल खजाने में जमा करने और सिपाहियों को निर्धारित वेतन देने की प्रथा शुरू की गई। परिणामस्वरूप लूटपाट करने, अधिक से अधिक लूट मचाने में सिपाहियों का कोई निजी स्वार्थ नहीं रहा। लूट में माल मिले न मिले, कम मिले या अधिक, सिपाहियों को वेतन मिल जाता था। अतः बगैर किसी कारण लूटपाट करने की, ठाट के लिए लूट मचाने की प्रवृत्ति खत्म हो गयी।[12]

शिवाजी महाराज का निजी पाक चरित्र, सोच-समझकर निश्चित उद्देश्य की खातिर दिये गये स्पष्ट आदेश, आदेशों की अवहेलना करने वालों के लिए निर्धारित कठोर सजाएं, उत्पादक किसानों के बीच से ही सेना की संरचना, कृषि और श्रम से सिपाहियों का घनिष्ठ सम्बन्ध, नकद वेतन के भुगतान की प्रथा और सबसे प्रमुख, यानि अन्याय और लूट का प्रतिकार करने के उद्देश्य से प्रारंभ किया गया काम आदि—इन सब के कारण शिवाजी की सेना और अन्य राजाओं की सेना के बीच भिन्नता थी। साधारण प्रजा को, शिवाजी महाराज की सेना, लुटेरी सेना प्रतीत नहीं होती थी, इसके विपरीत लूट को प्रतिबंधित करने हेतु निकली हुई, संरक्षक सेना प्रतीत होती थी। प्रजा सेना की सहायता करती थी और सेना प्रजा की सुरक्षा।

सर्वसाधारण जनता के लिए शासन-संचालन हेतु सेना और प्रजा के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध आवश्यक होते हैं। जनता सेना से भयभीत न हो, इसके लिए ऐसा प्रबन्ध करना पड़ता है कि सेना और जनता एक दूसरे की पूरक बने। सफलता तभी मिलती है। आधुनिक युग में भी जनता और सेना की ऐसी मिसालें मौजूद हैं। वियतनाम की मिसाल इसका ताजा उदाहरण है।

वाणिज्य-उद्योगों को संरक्षण

स्थानीय वस्तुओं का व्यापार बढ़ाने हेतु आयातित वस्तुओं पर भारी कर लगाकर, स्वदेशी माल के लिए सुरक्षा प्रदान करने की नीति सभी आधुनिक देशों में प्रचलित है। परन्तु सामन्ती प्रथा के मध्य युग में भी ऐसा करारोपण करके शिवाजी महाराज ने स्पष्ट ही स्थानीय वाणिज्य-उद्योग को प्रोत्साहन देने की नीति अपनायी।

6 दिसम्बर 1671 को शिवाजी ने कोंकण प्रदेशातंर्गत कुड़ाल के प्रान्त अधिकारी नरहरि आनन्द राव के नाम एक पत्र लिखा था। उस पत्र में शिवाजी महाराज लिखते हैं—

"संगमेश्वर से आने वाला बाहरी नमक महंगा होना चाहिए। इस प्रकार का आयात कर लगाने का करार हो। यदि ऐसा कठोर कर न लगाया गया और इसमें छूट दि गई तो हमारे देशी उत्पादन बर्बाद हो जायेंगे। हमारे अपने बन्दरगाह ठप्प हो जायेंगे। यह वास्तविकता है। अतः पत्र मिलते ही तुरन्त समस्त दर्रे में भारी कर बढ़ाये जायें।"[13]

महाराज की दूर-दृष्टि और सर्वव्यापी दृष्टि का यह एक और पहलू है। स्वराज्य की कृषि के साथ ही, वाणिज्य-उद्यमों की भी महाराज चिन्ता रखते थे।

शिवाजी महाराज के शासन में महाराष्ट्र में डच व्यापारी, व्यापार करते थे। उन्होंने व्यापार करने की अनुमति चाही थी। महाराज ने अनुमति प्रदान कर दी। परन्तु कुछ प्रतिबन्ध लगाये। उनमें कर भी शामिल था। शिवाजी महाराज ने डच कम्पनी को 24 अगस्त 1677 को करारनामा दिया। उसमें कहा गया था—

जिंजी प्रान्त के परिसर में डच कम्पनी को व्यापार करने की अनुमति प्रदान की जा रही है। कुड्डालोर नामक स्थान पर डचों को अपने माल पर ढाई प्रतिशत कर जमा करना होगा।[14]

'सभी आयातित और निर्यातित माल की पूर्व जानकारी दी जाने पर अधिकारीगण माल का पार्सल जांच-पड़ताल के लिए नहीं खोलेंगे। हवलदार और अन्य अधिकारियों के पास उचित कर जमा किये बगैर कम्पनी को माल का आधिपत्य लेने से रोका जायगा।'

Scanned with CamScanner

गुलामों के व्यापार पर प्रतिबन्ध

उपरोक्त अनुमति या करार में गुलामों के व्यापार को प्रतिबंधित करने वाली एक महत्वपूर्ण और अब तक उपेक्षित धारा इस प्रकार है—

'मुगल शासनों में बगैरे किसी रोक-टोक के महिलाओं और पुरुषों की गुलामों के रूप में खरीद-बिक्री की आपको अनुमति थी, परन्तु अब मेरे शासन में महिलाओं और पुरुषों की गुलामों के रूप में खरीद-बिक्री की इजाजत नहीं। यदि आपने ऐसा करने का प्रयास किया तो मेरे लोग आपको रोकेंगे। इस धारा का अनिवार्यतः पालन अत्यावश्यक है।'

जिस युग में भारत में भी कहीं-कहीं गुलामों का व्यापार प्रचलित था, भारतीय स्त्री-पुरुष श्रमिकों को पकड़ कर, गुलाम बनाकर जबर्दस्ती विदेश भेजा जाता था, उस युग में अपनी प्रजा के गुलाम के रूप में व्यापार पर शिवाजी महाराज ने प्रतिबन्ध लगा दिया।

सर्वत्र और सभी प्रकरणों में प्रजा की हर प्रकार से रक्षा करना, यह शिवाजी महाराज के शासन का उद्देश्य था।

❑❑❑

3. धर्मावलंबी परंतु धर्म विद्वेषी नहीं

शिवाजी और धर्म

कुल मिलाकर शिवाजी महाराज का धर्म सम्बन्धी दृष्टिकोण क्या था? हिन्दू धर्म और मुस्लिम धर्म के सम्बन्ध में शिवाजी का बर्ताव कैसा था? ये इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रश्न हैं। वर्तमान को दृष्टि में रखते हुए भी यह महत्वपूर्ण है।

शिवाजी हिन्दू थे, उन्होंने महाराष्ट्र में जन्म लिया और उनका कार्यक्षेत्र भी महाराष्ट्र ही रहा। परिणामस्वरूप हिन्दुओं के मन में शिवाजी को लेकर अभिमान है, जो स्वाभाविक है। उसमें भी महाराष्ट्र के हिन्दुओं का गर्वानुभव कुछ अधिक ही है। यह भी स्वाभाविक ही है। इसमें असामान्य कुछ नहीं। स्वयं की महानता, स्वधर्म का बड़प्पन, अपने प्रदेश का बड़प्पन, इसे अपने प्रदेश के, अपने धर्म के, नामी-गरामी, प्रसिद्ध, गुणवान और स्मरणीय इतिहास पुरुषों की प्रकाश किरणों में देखना और प्रस्थापित करना मानव स्वभाव है।

परन्तु स्वधर्मी महापुरुष कह कर उस पुरुष की जिस प्रतिमा का हम निर्माण करते हैं वह अनेक बार, असावधानी के कारण अहंकारपूर्ण बन जाती है। वर्तमान युग में शिवाजी का सुविधाजनक मानकर, जानबुझ कर और खास कर एकांगी चित्रण किया जाता है। इससे विकृति उत्पन्न होती है, और मूल प्रतिमा का गड्डमड्ड-सा स्वरूप सामने आता है।

शिवाजी महाराज का कार्य, प्रशासन, उनका युग, उनके द्वारा किये गये सुधार, और विशेषकर उनके धर्म सम्बन्धी दृष्टिकोण आदि के सम्बन्ध में जनमानस में व्याप्त छवि तर्कसंगत और ऐतिहासिक दृष्टि से न्यायसंगत न होने के और भी कारण हैं।

Scanned with CamScanner

निरक्षर और गंवार आदमी भी शिवाजी के नाम से वाकिफ है। उनकी कहानियां उसे पता है। स्थान, नाम, प्रसंग, सम्बन्ध आदि के बारे में वह जानता है। यह जानकारी गांव-देहातों के निरक्षरों तक कैसे पहुंची?

शिवाजी, शिवाजी के काल, उनके चरित्र से सम्बन्धित चमत्कारिक प्रसंगों, उदात्त प्रसंगों, नाट्यमय प्रसंगों आदि पर महाराष्ट्र में अनेक लोकगीतों की रचना हुई। शिवाजी महाराज के युग में और तब से लेकर अब तक महाराष्ट्र में क्या एक भी ऐसा कवि हुआ है, जिसने शिवाजी पर एक भी चरित्रगीत, श्रृंगार गीत आदि की रचना नहीं की होगी? जवाब स्पष्टतः 'नहीं' में होगा। सभी ने उनके चरित्र पर रचनाएं तैयार कीं और यह स्वाभाविक ही है। चरित्र गीतों, लोक गीतों, कीर्तन, परिसंवाद और भाषणों से लेकर नौटंकी, नाटक और सिनेमा तक के सम्बन्ध में स्थिती यही है। निरक्षर ग्रामीणों तक इन्हीं माध्यमों से इतिहास पहुंचता है। शिवाजी के चरित्र-चित्रण में जानबूझ कर लायी गयी विकृतियों को अनदेखा कर दिया गया और असावधानी के कारण उनका एकांगी रूप सामने आया। साथ ही प्रचार और प्रसार के माध्यमों की भी अपनी कुछ सीमाएं रहीं।

मनोरंजन की आकांक्षा से एकत्रित जनसमुदाय को अन्त तक चरित्र गीत या नाटक सुनने और देखने के लिए बाध्य करना हो तो चमत्कार के बगैर काम कैसे चल सकता है? अतिशयोक्ति के बगैर, अलंकरण के बिना और केवल अंकगणित, सेना की संख्या, और उसके कार्यकलाप बताकर और तर्कबद्ध विश्लेषण से क्या यह प्रयोजन पूरा हो सकता है? इसके अतिरिक्त श्रोताओं की समझ के स्तर को ध्यान में रख कर ही चरित्र गीतों की रचना की जाती है। और फिर रचनाकार की जानकारी की भी सीमाएं होती हैं, अतः यह सच है कि उन माध्यमों की सीमाएं, शिवाजी की विद्यमान छवि बनाने के लिए जिम्मेदार हैं, और निजी हित, वर्तमानयुगीन प्रासंगिकता, इतिहास के प्रति विकृत रवैया और कमोबेश अधकचरापन आदि, कुछ अन्य कारण भी हैं।

शिवाजी और मुसलमान

शिवाजी मुसलमानों के विरोधी थे, उनके जीवन का लक्ष्य इस्लाम धर्म का विरोध करना था, वह हिन्दू धर्म के संरक्षक थे, हिन्दुत्व के अधिष्ठाता थे, गैर-ब्राह्मणों के पालनहार थे—शिवाजी की यह छवि व्यापक जनमानस में विद्यमान है।

'शिवाजी न होते तो सभी का खतना हो जाता'—भूषण कवि की एक

रचना इस दृष्टिकोण को प्रस्तुत करती है। शिवाजी का युद्ध धर्मयुद्ध था, धर्म शिवाजी के कार्य का प्रेरणास्रोत था, शिवाजी धर्म के लिए लड़े। वह धर्म के लिए लड़े इसीलिए विजयी हुए। सच कहा जाये तो वह ईश्वर के ही अवतार थे, वह विष्णु थे, ईश्वर ने धर्म की रक्षा के लिए स्वयं उनके रूप में अवतार लिया था। देवी भवानी माता ने उन्हें जो तलवार प्रदान की वह धर्म की रक्षा के लिए ही थी। शिवाजी के कार्य का आधार यदि धर्म न होता, तो उनका विजयी होना असंभव था, आदि—शिवाजी के सम्बन्ध में जनमानस में अधिकांशतः यही छवि है।

ऐतिहासिक सत्य के आधार पर इस समझ की भी ठीक से जांच-पडताल की जानी चाहिए। हम हिन्दू हैं इसलिए, या यह समीकरण वर्तमान युग में सुविधाजनक सिद्ध होगा यह सोच कर, आंखे मूंद कर उसे स्वीकार कर लेना उचित नहीं होगा। इसके विपरीत, मुस्लिम धर्मानुयायी होने के कारण, मुसलमानों में हिन्दू विद्वेष भरने को आज की जरूरत मानकर अथवा बहुत से हिन्दू शिवाजी की जयकार करते हैं, इसलिए हम भी उन्हें हिन्दू धर्म रक्षक और मुस्लिम समुदाय का भक्षक मान लें, यह भी गलत होगा।

शिवाजी और राणा प्रताप, पृथ्वीराज आदि

यदि यह कहा जाता है कि शिवाजी हिन्दू थे, या हिन्दू धर्म संरक्षक थे, इसलिए विजयी हुए, तो फिर राणा प्रताप या पृथ्वीराज चौहान विजयी क्यों नहीं हुए? सच कहा जाये तो वह दोनों निर्विवाद रूप से उच्च वर्ग के क्षत्रीय हिन्दू थे। जबकि शिवाजी के क्षत्रीय होने के प्रति लोगों के मन में कतिपय शंका थी। वीरता, त्याग, संकल्प, सहनशीलता आदि में राणा प्रताप और पृथ्वीराज, शिवाजी से कम नहीं थे, बल्कि कुछ बढ़-चढ़ कर ही रहे होंगे। फिर ऐसा क्यों हुआ? यदि उनके द्वारा लड़े गये युद्धों को धर्मयुद्ध कहा जाये, तो एक धर्मयुद्ध में विजयी हुआ, तो दूसरे दोनों को पराजित होकर भागना क्यों पड़ा? इसे हिन्दू राष्ट्र बनाने की ईश्वर इच्छा माना जाये तो फिर ईश्वर की यह इच्छा क्यों नहीं हुई कि राणा प्रताप और पृथ्वीराज चौहान के प्रदेश में भी हिन्दू राष्ट्र बने?

हिन्दू धर्म पर विश्वास के कारण, शिवाजी को विजयश्री प्राप्त हुई यह कहना ठीक नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि धर्मरक्षा के अतिरिक्त और भी बहुत कुछ करने के लिए शिवाजी निकल पड़े थे।

Scanned with CamScanner

कल्पना कीजिए कि शिवाजी के काल में मुस्लिम धर्मावलंबियों के स्थान पर अन्य धर्मावलंबी राजा रहते, हिन्दूधर्मी राजा रहते, तो क्या शिवाजी मुसलमानों का तिरस्कार करते? शिवाजी मुसलमान राजाओं के विरोध में क्यों लडे? वह मुसलमान थे इसलिए या राजा थे इसलिए? और यदि दोनों कारण थे तो प्रमुख और महत्वपूर्ण कौन सा था? वे राजा थे, यह महत्वपूर्ण है, या वे मुसलमान थे, यह महत्वपूर्ण है?

कुछ मुस्लिम राजाओं का साम्प्रदायिक सद्भाव

ऐसा नहीं कि सभी मुसलमान राजा हिन्दुओं और हिन्दू सम्प्रदाय से विद्वेष रखते थे। इतिहास में मुस्लिम शासकों द्वारा हिन्दू सम्प्रदाय के प्रति उदारता बरतने की प्रवृत्ति के अनेक प्रकरण उपलब्ध हैं, खास कर जिस महाराष्ट्र में शिवाजी ने राज्य किया, उस प्रदेश के मुसलमान रजवाड़ों की सहिष्णु प्रवृत्ति के, और हिन्दुओं के साथ शासकीय और पारिवारिक सम्बन्धों के कई साक्ष्य है।

पारसनीस द्वारा लिखित पुस्तक 'मराठे सरदार' का निम्नलिखित उद्धरण देखिये—

"निजामशाही, कुतुबशाही और आदिलशाही में मराठों का बहुत प्रभुत्व था। निजामशाही का पहला निजाम गांगवी, बहिरभट्ट कुलकर्णी का धर्म-परिवर्तित मुसलमान पुत्र था। अहमदनगर के बादशाह के पिता भी हिन्दू ही थे। बीजापुर राज्य के संस्थापक युसूफ आदिलशाह ने मराठों की कन्या से विवाह किया था। बेदर निवासी कासिम बरीद के पुत्र ने भी साबाजी की पुत्री से शादी की थी। इन्हीं सब संस्कारों के कारण पांचों राज्यों में हिन्दुओं के प्रति, उदार भाव था और मराठों का प्रभुत्व था।"[16]

इसी पुस्तक मे रानडे द्वारा उद्धृत और एक उद्धरण देखिये—

"उत्तर के धर्मान्ध मुसलमानों द्वारा दक्षिण के मुसलमानों का जाति बहिष्कार, बहामनी (ब्राह्मणी) राज्यों में हिन्दुओं के प्रति अच्छी धारणा और उनका प्रभुत्व, वसूली और खजाना विभागों में ब्राह्मणों और कायस्थों का प्रवेश, उनके कारण प्रशासकीय कार्यालयों में मराठी भाषा की शुरूआत, शक्ति-संतुलन के आधार पर मराठी शिलेदारों की पदोन्नति, बादशाह के हिन्दू कन्याओं के साथ सम्बन्धों के कारण राजदरबार पर हिन्दुओं की छाप, धर्मपरिवर्तित हिन्दुओं का स्वजातियों के प्रति असीम प्रेम, इन सब कारणों के परिणामस्वरूप दक्षिण के शासकों

में हिन्दुओं के प्रति उदार भाव उत्पन्न हुआ और हिन्दुओं को प्रोत्साहन सहूलियते और अधिकार प्राप्त हुए।"[17]

बहामनी राज्य के संस्थापक 'हसन गंगू बहामनी' का नाम क्या संकेत करता है? हसन जाफर नाम का मुसलमान व्यक्ति, गंगू नामक ब्राह्मण के पास पहले नौकरी करता था बाद में वह दिल्ली सल्तनत (तुगलक) के मातहत बड़ा सरदार हुआ। वह बादशाह की ओर से महाराष्ट्र का सूबेदार था। उसने बादशाह के विरुद्ध बगावत की और महाराष्ट्र में अपनी सत्ता स्थापित की। पूर्व मालिक की स्मृति और उसके प्रति श्रद्धा की अभिव्यक्ति के रूप में उसने अपना नाम आधा मुसलमान और आधा हिन्दू रख लिया और 'हसन गंगू' कहलाने लगा तथा अपने राज्य का नाम 'बहामनी', यानि ब्राह्मणों से सम्बन्धित रखा।

हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्ध हमेशा शत्रुतापूर्ण, पूरब-पश्चिम की तरह घोर विरोधी रहे हों, ऐसा नहीं है।

जब तक उनके शासन को हिन्दुओं की ओर से खतरा उत्पन्न नहीं होता, जब तक हिन्दू सरदार उनके राज्यों की मदद करते, तब तक मुस्लिम प्रशासक हिन्दुओं के प्रति उदार भाव रखते थे। राज्य को खतरा उत्पन्न होने पर, मुस्लिम हों या हिन्दू वे अनुदार बन जाते।

हिन्दू या मुस्लिम होना महत्वपूर्ण नहीं था, महत्वपूर्ण था शासन।

दिल्ली के सभी सुलतान कट्टर मुसलमान थे, यह सही नहीं है। अकबर की उदारवृत्ति से सभी परिचित हैं। उसने तो 'दीने इलाहीं' नामक एक मिश्रित धर्म की स्थापना का प्रयास किया। उस युग में व्यापक सांस्कृतिक एकता निर्मित हुई। हिन्दू मंत्री टोडरमल अपनी विद्वत्ता मुस्लिम राजा के भले के लिए ही खर्च कर रहा था। शाहजहां बादशाह के मातहत उच्चकुलीन खालिस तेलुगू ब्राह्मण जगन्नाथ पंडित, संस्कृत भाषा में काव्य रचना करते थे।

महापंडित जगन्नाथ की एक कहानी प्रसिद्ध है। शाहजहां के मातहत कार्यरत इस महापंडित को अपनी छत्रछाया में काम करने और हिन्दू राजा का सम्मान बढ़ाने के लिए जयपुर के राजा ने निमंत्रित किया था। इस निमंत्रण का महापंडित जगन्नाथ द्वारा दिया गया उत्तर मार्मिक है। उन्होंने अपने उत्तर में लिखा :

"दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा मनोरथान् पुरयितुं समर्थः
अन्यैनृपालैः परिदीयमानम् शाकाया वा स्थल्लबणाम् वा स्थान"

Scanned with CamScanner

(मेरी मनोकामना पूरी करने की शक्ति केवल दिल्लीश्वर (दिल्ली का राजा) या जगदीश्वर (परम पिता परमात्मा) इन दोनों में ही है। इनके अतिरिक्त बचे हुए राजाओं ने मुझे कुछ देने का सोचा तो वह मेरा नमक-मिर्च का खर्च भर उठाने जैसा होगा।)

दिल्लीश्वर की जाति महत्वपूर्ण नहीं थी। वह जो दे रहा था और जितना दे रहा था, महत्व उसका था। शाहजहां का पुत्र दारा संस्कृत का ज्ञाता था। उसका उठना-बैठना बनारस के हिन्दू पंडितों के बीच था। उसी युग में छांदोग्य उपनिषद, बृहदारण्यक उपनिषद, केनोपनिषद् आदि उपनिषदों के अनुरूप अल्लोपनिषद जैसी कृति लिखी गई थी।[18]

शेजवलकर जी ने तो यह तक लिख डाला है कि, औरंगजेब के स्थान पर यदि उसका अग्रज दारा राजा बन जाता तो इस विस्तृत देश का एकीकरण एक ही राज्यतंत्र के अंतर्गत हो जाता और देश शक्तिशाली बन जाता।[19] संक्षेप में, सभी मुसलमान प्रशासक हिन्दू धर्म-विरोधी नहीं थे।

शिवाजी के मुसलमान सेनानायक

शिवाजी के पास अनेक मुसलमान सेनानायक, मुखिया और नौकर थे और वे उच्च उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर आसीन थे।

शिवाजी का तोपखाना-प्रमुख एक मुसलमान था। उसका नाम इब्राहिम खान था। तोपखाना, यानी फौज का एक महत्वपूर्ण विभाग, उसके पास था। तोपें यानी उस युग के सर्वाधिक विकसित हथियार। किले के युद्ध में उनका बड़ा महत्व होता है। ऐसे तोपखाने का प्रमुख एक मुसलमान था।

नौसेना की स्थापना को छत्रपति शिवाजी महाराज की दूरंदेशी का उदाहरण माना जाता है और यह ठीक भी है। कोंकण पट्टी की विस्तृत भूमि समुद्र के समीप थी। इस सारे क्षेत्र की सुरक्षा के लिए नौसेना अपरिहार्य थी। शिवाजी ने उसे तैयार किया। और ऐसे महत्वपूर्ण विभाग का प्रमुख भी एक मुसलमान सेनानायक ही था। उसका नाम था दौलत खान, दर्यासारंग दौलत खान।

शिवाजी के खास अंगरक्षकों में और निजी नौकरों में बहुत ही विश्वसनीय मदारी मेहतर शामिल था। आगरे से फरारी के नाटकीय प्रकरण में इस विश्वसनीय मुसलमान साथी ने, शिवाजी का साथ क्यों दिया? शिवाजी मुस्लिम-विरोधी होते तो शायद ऐसा नहीं होता।

शिवाजी के पास कई मुसलमान चाकर थे, उनमें काजी हैदर भी एक था। सालेरी के युद्ध के बाद, औरंगजेब के अधीन, दक्षिण के अधिकारियों ने, शिवाजी के साथ मित्रता कायम करने के लिए एक ब्राह्मण वकील भेजा तो उसके उत्तर में शिवाजी ने काजी हैदर को मुगलों के पास भेजा, यानि मुसलमानों का वकील हिन्दू और हिन्दुओं का वकील मुसलमान। उस युग में, यदि समाज का विभाजन हिन्दू-विरुद्ध-मुसलमान होता तो ऐसा नहीं होता।

सिद्दी हिलाल ऐसा ही एक और मुसलमान सरदार, शिवाजी के साथ था। सन 1660 में शिवाजी ने रुस्तम जमा और फाजल खान को रायबाग के पास हराया। उस समय सिद्दी हिलाल शिवाजी के पक्ष में लड़ा। उसी प्रकार जब सन 1660 में सिद्दी जौहर ने पन्हालगढ़ किले की घेराबंदी की, तब नेताजी पालकर ने उसकी सेना पर घात लगाकर घेराबंदी उठवाने का प्रयास किया, उस समय भी हिलाल और उसका पुत्र नेताजी के साथ थे। इस भिड़न्त में सिद्दी हिलाल का पुत्र बाहबाह जख्मी हुआ और पकड़ लिया गया। सिद्दी हिलाल, अपने पुत्र के साथ, हिन्दू शिवाजी की ओर से, मुसलमानों के विरुद्ध लड़ा।

उन युद्धों का स्वरूप यदि केवल हिन्दू बनाम मुसलमान रहता, तो परिणाम क्या होता? 'सभासद बखर' के पृष्ठ 76 पर शिवाजी के ऐसे ही एक शिलेदार का उल्लेख है, उसका नाम शामाखान था। राजवाड़े कृत 'मराठों के इतिहास के स्रोत' पुस्तक के खण्ड 17, पृष्ठ 17 पर 'नुरखान बेग' का उल्लेख शिवाजी का सरनोबत कह कर किया गया है।[20]

स्पष्ट है कि ये सरदार अकेले नहीं थे। अपने अधीनस्थ सिपाहियों के साथ वे शिवाजी की सेवा में थे।

परन्तु इससे अधिक महत्वपूर्ण एक अन्य प्रामाणिक साक्ष्य है। उससे शिवाजी महाराज की मुस्लिम धर्मानुयायी सिपाहियों के प्रति नीति स्पष्ट होती है।

रियासतकार सरदेसाई द्वारा लिखित 'सामर्थ्यवान शिवाजी' पुस्तक में से यह उद्धरण देखिए—

"सन 1648 के आसपास बीजापुर की फौज के पांच-सातसौ पठान शिवाजी के पास नौकरी हेतु पहुंचे, तब गोमाजी नाईक पानसंबल ने उन्हें सलाह दी, जिसे उचित मान शिवाजी ने स्वीकार कर लिया और आगे भी वही नीति कायम रखी। नाईक ने कहा, 'आपकी प्रसिद्धि सुनकर ये लोग आये हैं, उन्हें निराश

Scanned with CamScanner

होकर वापस भेजना उचित नहीं है। हिन्दूओं को ही इकट्ठा करो औरों से वास्ता नहीं रखो—यदि यह समझ कायम रखी तो राज्य प्राप्ति नहीं होगी। जिसे शासन करना हो, उसे अठारह जातियों, चारों वर्ण के लोगों को, उनके जाति सम्प्रदाय के अनुरूप, संगठित करना चाहिए।"[21]

सन 1648 के, जबकि अभी शिवाजी के सम्पूर्ण शासन की स्थापना होनी थी, उपरोक्त उदाहरण से यह स्पष्ट अभिव्यक्त हो जाता है कि उनके शासन कायम करने की नीति का आधार क्या था।

शिवाजी से सम्बन्धित में ग्रांट डफ ने भी पृष्ठ 129 पर गोमाजी नायक की सलाह का उल्लेख करते हुए कहा है—

"इसके बाद शिवाजी ने अपनी सेना में मुसलमानों को भी शामिल कर लिया और राज्य स्थापना में वे बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुए।"[22]

शिवाजी के सरदार और शिवाजी की सेना, केवल हिन्दू धर्मी नहीं थी। यह भी स्पष्ट है कि उनमें मुस्लिम सम्प्रदाय के लोगों की भी भर्ती की गयी थी। यदि शिवाजी मुस्लिम सम्प्रदाय को समाप्त करने का कार्य कर रहे होते तो वे मुसलमान शिवाजी के पास नहीं ठहरते। शिवाजी मुसलमान शासकों के अत्याचारी शासन की समाप्ति हेतु निकले थे। प्रजा की चिन्ता करने वाले शासन की स्थापना हेतु निकल पड़े थे, इसीलिए मुसलमान भी उनके कार्य में हिस्सेदार बने।

मुख्य प्रश्न धर्म का नहीं था। शासन का प्रश्न प्रमुख था। धर्म मुख्य नहीं था, राज्य प्रमुख था। धर्मनिष्ठा मुख्य नहीं थी, राज्यनिष्ठा और स्वामीनिष्ठा प्रमुख थी।

मुसलमान शासकों के हिन्दू सेनानायक

जिस प्रकार शिवाजी के पास मुसलमान सरदार और सेना थी, उसी प्रकार मुसलमान राजाओं-महाराजाओं के पास अनगिनत मराठे और हिन्दू सरदार थे। उनकी सूची तो बहुत ही लम्बी है।

स्वयं शिवाजी महाराज के पिता, बीजापुर की आदिलशाही के मातहत एक बड़े सरदार थे। शहाजी महाराज के श्वसुर, सखुजी जाधव महाराष्ट्र में निजामशाही के एक जमींदार थे। जावली के मोरे, फलटन के निम्बालकर, सावंतबाडी के खेम सावंत, श्रृंगारपुर के सूर्यराव श्रृंगारपुरे, ये सभी लोग आदिलशाही के पदाधिकारी थे।

जिसकी सैन्य शक्ति और दावपेंच के कारण शिवाजी को पराजय स्वीकार करनी पड़ी, और अपमानजनक समझौता करके संभाजी के साथ आगरा में बंदी बनना पड़ा, वह मिर्जा राजे जयसिंह उत्तर का नामी-गरामी सरदार कट्टर राजपूत हिन्दू था, और फिर भी मुस्लिम शहंशाह के पास काम करता था। और जब मिर्जा राजे जयसिंह ने धावा बोला, तब उसकी सेना में, कई हिन्दू सरदार थे, जाट थे, मराठा थे, राजा रायसिंह सिसोदिया, सुजानसिंह बुन्देला, हरीभान गौर, शेरसिंह राठौर, चतुर्भुज चौहान, मित्र सेन, इन्द्रभान बुन्देला, बाजी चन्द्रराव, गोबिन्द राव आदि थे।

कोण्डाना किले पर कब्जा करते समय, तानाजी मालुसरे वीरगति को प्राप्त हुए, और कोण्डाना का नाम सिंहगढ़ पड़ा। उस युद्ध में शामिल कोण्डाना का किलेदार उदयभानु एक हिन्दू राजपूत ही था, और वह मुसलमान राजा का किलेदार था।

अकबर के पास 500 से अधिक मनसब पाने वाले जितने भी सरदार थे, उनमें से हिन्दू सरदारों की संख्या 22.5 प्रतिशत थी। शाहजहां के शासन में यह संख्या 22.4 प्रतिशत थी। सभी मुस्लिम शासकों में, जिन्हें सबसे कट्टर माना जाता है, उस औरंगजेब के पास शुरूशुरू में 21.6 प्रतिशत हिन्दू पदाधिकारी थे जो बाद में बढ़कर 31.6 प्रतिशत हो गये।[23]

औरंगजेब ने ही राजा जसवंत सिंह नामक हिन्दू राजपूत को सूबेदार नियुक्त किया था। इसी औरंगजेब का प्रथम प्रधान रघुनाथ दास नामी हिन्दू था। स्वयं राजपूत होते हुए भी वह राजपूतों के विरुद्ध लड़ा। राणा प्रताप की सेना का एक सेनानायक हकीम खान नूर मुसलमान था। पेशवाओं का तोपखाना प्रमुख इब्राहिम गारदी था।

जो हिन्दू, मुसलमान राजाओं के पास ईमानदारी और विश्वास के साथ चाकरी करते थे, और अपने मालिकों के प्रति निष्ठा रखते थे, वे हिन्दुओं के विरुद्ध भी युद्ध करते थे, उन्हें उस युग में किसी ने भी 'धर्म डुबाने वाले' या 'धर्म-विरोधी' या 'मुस्लिम-परस्त' नहीं कहा। स्वामीनिष्ठा की मान्यता धर्मनिष्ठा से अधिक थी।

प्राचीन और मध्ययुगीन भारत में, धर्म के कारण और धर्म के लिए युद्ध नहीं होते थे। युद्धों का प्रमुख उद्देश्य शासन प्राप्ति, प्रदेश हथियाना और उन्हें कायम रखना था। यह सही है कि जहां तक उपयुक्त होता वहां तक इस कार्य में धर्म का उपयोग किया जाता था, परन्तु वह मुख्य बात नहीं थी। ऐसे कई एक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

Scanned with CamScanner

मुसलमानों के खिलाफ मुसलमान, हिंदूओंके खिलाफ हिंदू, हिंदू-मुसलमान के खिलाफ हिंदू-मुसलमान

जिस प्रकार यह सत्य है कि शिवाजी महाराज के पास मुसलमान सरदार, नौकर और सेना थी, तथा मुस्लिम राजाओं के पास हिन्दू सरदार और सेना थी, उसी प्रकार उस युग में किसके विरुद्ध कौन लड़ा इसका मूल्यांकन किया जाये तो हम पायेंगे कि वे युद्ध केवल हिन्दुओं के विरुद्ध मुसलमानों का युद्ध नहीं था।

मुस्लिमधर्मी राजाओं के बीच आपस में युद्ध होते थे। देहली के मुसलमान राजा, इब्राहिम खान लोदी को हरा कर ही दूसरा मुसलमान, बाबर, दिल्ली का राजा बना, और उसी ने मुगल साम्राज्य कायम किया। हुमायूं और शेरशाह दोनों इस्लाम धर्मी थे, परन्तु वे दोनों एक दूसरे के विरुद्ध, जानलेवा युद्ध लड़े। बीजापुर और गोलकुण्डा की रियासतें मुसलमान रियासतें थीं। इन मुस्लिम रियासतों के विरुद्ध औरंगजेब लम्बी अवधि तक लड़ा। महत्व धर्म का नहीं था। महत्व था तो राज्य का। यदि धर्म का महत्व था भी तो गौण, प्रमुख बात शासन थी।

एक ओर राणा प्रताप और दूसरी ओर अकबर के बीच हल्दी घाटी की प्रसिद्ध लड़ाई हुई। राजस्थान, राजपूतों और राणा प्रताप की दृष्टि से, वह युद्ध बहुत ही महत्वपूर्ण था, परन्तु क्या हल्दी घाटी के इस युद्ध को हिन्दू-मुसलमानों के बीच हुई लड़ाई कहा जा सकता है?

राजपूत मानसिंह के जिम्मे मुसलमान अकबर की सेना की अगुवाई थी। उस सेना में 60,000 मुगल और 40,000 राजपूत सिपाही थे। जिस प्रकार राणा प्रताप की सेना में 40,000 राजपूत सैनिक थे, उसी तरह हकीम नूर के नेतृत्व वाली पठानों की एक बड़ी टुकड़ी थी, उनके पठान राजा ताजखान की घुड़सवार सेना भी थी। उसका तोपखाना प्रमुख भी एक मुसलमान सरदार था।[24]

औरंगजेब के युग में गुरु गोबिन्द सिंह भी, केन्द्रीय मुस्लिम सत्ता के विरोध में लड़े। उनकी सेना में भी सिखों के साथ हजारों मुसलमान थे। औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात उसके उत्तराधिकारियों के बीच, सत्ता प्राप्ति के लिए हुई लड़ाइयों में उन्होंने बहादुर शाह का साथ दिया।

जाट, राजपूत, मराठा और सिखों की बगावतों के पीछे धार्मिक आधार

नहीं के बराबर था। मुख्य रूप से ये बगावतें केन्द्रीय सत्ता की असह्य नीति के विरुद्ध हुई थीं। उस युग में सम्प्रदाय को दरकिनार कर सरदार, जागीरदार और सिपाही अपने स्वामी की सेवा करते थे। सामन्तयुगीन स्थायी सेना में, हिन्दू राष्ट्रवाद या इस्लाम के प्रसार की इच्छा नहीं थी। उस युग की सर्वमान्य प्रचलित नीति थी कि जब तक राजा पेट भरता रहे तब तक विश्वास और भरोसे के साथ उसकी सेवा की जाये।

मन्दिरों की लूट, तोड़-फोड़ आदि

मुसलमान राजा जालिम थे, उन्होंने मन्दिर तोड़े, देवस्थान भ्रष्ट किये, धर्म को डुबोया। अतः सभी मुसलमान हिन्दुओं और हिन्दू धर्म के विरोधी होते हैं, और हैं, और चूंकि वे हिन्दू-विरोधी हैं अतः हिन्दुओं को भी उनका विरोधी रहना चाहिए—हिन्दू संगठनों का यह दर्शन रहा है और है।

धर्म को आधार मान कर हिन्दुओं को संगठित करने वाले संगठन जिस तरह यह नीति अपनाते हैं, उसी प्रकार मुस्लिम धर्म पर आधारित कट्टर मुस्लिम संगठनों का दर्शन भी यही होता है।

कट्टर मुस्लिम संगठन अपने अनुगामियों को बताते हैं कि 'हिन्दू धर्म, काफिरों का धर्म है, हमारे पूर्वजों ने उसे मटियामेट करने के लिए जो किया, वह ठीक ही किया था। (यदि संभव हुआ तो) हमें भी वही करना चाहिए। कम से कम हिन्दुओं का विरोधी तो रहना ही चाहिए'। वे ऐसा प्रचार करते हैं।

यह सच है कि आक्रमणकारी मुस्लिम सेनाओं ने सत्ता पर अधिकार करते समय और राज्य का विस्तार करते समय, हिन्दुओं के मन्दिर तोड़े और लूटे, परन्तु यह शत-प्रतिशत सच नहीं है, अर्द्धसत्य है। अरबी, तुर्की, अफगान आदि आक्रमणकारी और टुकड़ों-टुकड़ों में विभाजित सेना को नियमित वेतन नहीं दिया जाता था। यह परिपाटी थी कि वे लूट मचायें, और लूट के हिस्से में से अपना वेतन पायें। लूट के लिए वे मन्दिर गिराते और सम्पत्ति का बंटवारा कर लेते थे।

दर्रे बीहड़ों में और पर्वतों की चोटियों पर स्थित जिन मन्दिरों में भगवान तो थे, लेकिन सम्पत्ति नहीं, ऐसे मन्दिरों की ओर आक्रमक सेनाएं देखती तक नहीं थीं। कारण क्या है? उनका उद्देश्य था सम्पत्ति लूटना। मन्दिर गिराना उनका मुख्य ध्येय नहीं था।

Scanned with CamScanner

सम्पत्ति की लूट ही प्रमुख थी। धर्म दूसरे नम्बर पर आता था। प्रमुख ध्येय की पूर्ति के लिए मन्दिर गिराये जाते थे। इस लूट में से एक बड़ा हिस्सा राजा के पास पहुंचता था। राजा की आय का यह एक मुख्य स्रोत था।

मन्दिर के आस-पास के लोगों को पस्त करना, उनकी लड़ने की हिम्मत तोड़ कर उनमें भय का संचार करना भी एक ध्येय रहता था। लोग भोले-भाले तथा धर्म पर आस्था रखने वाले थे। वे मानते थे जिसने ईश्वर को लूट लिया वह हमें तो हर हालत में लूट लेगा। इस प्रकार का भय उनमें उत्पन्न हो जाता था। ईश्वर सर्वशक्तिमान है, जब वह उनका कुछ नहीं बिगाड़ सका, फिर हम तो साधारण आदमी हैं, हम क्या कर पायेंगे? लोगों में इस प्रकार की भावना फैल जाती और उन पर विजय पाना आसान हो जाता।

तत्कालीन मन्दिर केवल धर्म के केन्द्र नहीं थे। वे सम्पत्ति के भंडार थे, प्रतिष्ठा और सत्ता के केन्द्र थे। मन्दिर लूटने का और भी एक लाभ था, हम काफिरों के मन्दिर गिराते हैं, उनका धर्म डुबाते हैं—यह कहकर अपनी लूट को छिपाया जाता था। इससे धर्मान्ध मुल्ला-मौलवियों का और उनके द्वारा पूरे मुस्लिम समाज का अनुमोदन प्राप्त करना सरल हो जाता। धर्म को निजी दुष्कृत्यों पर परदा डालने का साधन बनाया जाता था।

पहले लूटा बाद में इनाम दिये

जो मुसलमान राजा शासन स्थापना या राज्य विस्तार के वक्त मन्दिर लूटते थे, वे ही राज्यों को जीत लेने के बाद तथा सब कुछ सुव्यवस्थित हो जाने पर फिर मन्दिरों और देव-स्थानों को दान-दक्षिणा दिया करते थे। इसके कई साक्ष्य मौजूद हैं।

धर्मनिष्ठ और धर्मान्ध के रूप में ज्ञात औरंगजेब ने, राज्य विस्तार के लिए किये गये हमलों में मन्दिर धराशायी किये, यह सही है, परन्तु उसी औरंगजेब ने कई मन्दिरों को धन दिया। अहमदाबाद स्थित जगन्नाथ मंदिर को उसने 200 गांव उपहार में दिये थे। मथुरा और बनारस के देव-स्थानों को भी धन-सम्पत्तिया प्रदान की थीं।

अफजल खान ने पंढरपुर और तुलजापुर स्थित मंदिरों की मूर्तियां तोड़ी थीं या नहीं, इस सम्बन्ध में जानकार लोगों के बीच मत-भिन्नता है। कुछ का मत है कि उसने उन्हें तोड़ा था, परन्तु शेजवलकर मानते हैं कि उसने ऐसा नहीं किया। वे बहुत प्राचीन प्रतीत होती हैं।[25] बहरहाल, यह भी सत्य है कि

अफजल खान जब वार्ड का सूबेदार था तब उसने अनेक ब्राह्मणों-भिक्षावृत्तिजीवियों के पुराने ठिकानों को चलने दिया और उन्हें नयी जगहें दीं। इसके अलावा, यह भी कहा जाता है कि अफजल खान ने जब तुलजा भवानी का मन्दिर तोड़ा, तब खान के साथ पिलाजी मोहिते, शंकर रामजी मोहिते, कल्याणराव यादव, नाईकजी सराटे, नागोजी पाण्ढरे, प्रतापराव मोरे, झुंजारराव घाटगे, काटे, बाजी घोरपडे और संभाजीराव भोसले भी थे। इसे भूला नहीं जा सकता। यह सर्वविदित है कि सन् 1791 में मराठों द्वारा लूट के दौरान तोड़े गये देवी शारदा के शृंगेरी मन्दिर का टीपू सुलतान ने पुनरुद्धार कराया था।

राज्यों के सुव्यवस्थित हो जाने के बाद मन्दिरों को अनुदान राशि और पुरस्कार क्यों दिये गये? मुस्लिम शासक चाहते थे कि अनुदान और पुरस्कार लेकर हिन्दू चुप लगा जायें और उनके शासन को हानि न पहुंचायें।

मन्दिर गिराने और लूटने के पीछे राजनीतिक उद्देश्य था और मन्दिरों को पुरस्कृत करने और उनका पुनरुद्धार करने के पीछे भी यही वजह थी।

सत्ता प्रमुख, धर्म गौण

यह सच नहीं है कि केवल मुसलमान राजा ही मन्दिर लूटते थे। हिन्दू राजा भी सम्पत्ति के लिए मन्दिर लूटा करते थे।

कश्मीर के हर्षदेव नामक राजा ने हिन्दुओं के मन्दिरों को भी लूटा। वह धातु के लिए मूर्तियों को पिघलवाता। पिघलाने से पहले उन पर अवांछित वस्तुएं (विष्टा-मूत्र) डाल कर उनकी पवित्रता नष्ट करता था। इसका सविस्तर वर्णन कल्हण की 'राजतरंगिनी' नामक ग्रन्थ में मिलता है। उस युग में ईश्वर प्रतिमाओं के साथ इस तरह के व्यवहारस्वरूप साम्प्रदायिक दंगे भड़कने का कोई उल्लेख नहीं मिलता है।

उस दौर के शासकों ने अपने आय-स्रोतों में 'ईश्वरोत्पादन' खाता भी जोड़ लिया था।[26]

राज्य कायम रखने के लिए मुल्ला-मौलवियों की भी मुस्लिम शासक परवाह नहीं करते थे और उनको भी कष्ट पहुंचाया करते थे।

मुहम्मद तुगलक पर बखरकार ने यह आरोप लगाया कि उसने मुल्ला और सैयदों का वध किया था। कुछ इतिहासकारों ने लिखा है कि मुल्लाओं की जमात जहांगीर बादशाह से इतनी भयभीत थी कि वे उसके सामने नहीं पड़ते थे।

Scanned with CamScanner

इसका मतलब क्या है? तत्कालीन शासकों के लिए जितना शासन का महत्व था, उतना धर्म का नहीं। उन्होंने धर्म का सहारा लिया, यह सही है। परन्तु उनके लिए धर्म नहीं बल्कि शासन ही प्रमुख था। पूर्ण सत्य यही है।

शिवाजी की मराठों और हिन्दुओं के विरुद्ध लड़ाइयां

छत्रपति शिवाजी महाराज को अपने स्वाधीन राज्य की स्थापना के लिए छोटी-मोटी कई लड़ाइयां लड़नी पड़ीं। उनके शासक चूंकि मुसलमान थे, अतः उनके विरुद्ध तो लड़ना पड़ा ही, साथ ही मराठों के विरुद्ध भी युद्ध लड़ने पड़े। इतिहास ने उनका विस्तृत ब्यौरा लिख छोड़ा है। वास्तविकता से आंखे बन्द करना उचित नहीं है।

रियासतकार सरदेसाई अपने मराठी ग्रन्थ 'रियासत' में बताते हैं "बीजापुर वालों से युद्ध हिन्दू-मुसलमानों के बीच का युद्ध नहीं था। उस युद्ध का इस प्रकार का स्वरूप धारण करना सम्भव नहीं था।..."

"बीजापुर वालों की ताबेदारी में बड़े-बड़े मराठा सरदारों के घराने जुटे थे। उनके मन में शिवाजी के प्रति श्रद्धाभाव नहीं था। मोहिते, घोरपडे, मोरे, सावंत, दलवी, सुर्वे, निंबालकर आदि सैकड़ों सरदार शुरू से ही कमोबेश शिवाजी के विरोधी थे।"

वे और अनेक हिन्दू मराठा सरदार शिवाजी के विरोधी क्यों थे? वे सब तो हिन्दू ही थे, धर्मनिष्ठ और धर्मानुयायी थे। यदि शिवाजी का उद्देश्य धर्म की रक्षा ही करना होता तो फिर इन सब हिन्दुओं ने क्यों उनका विरोध किया?

सरदेसाई के अनुरुप ही सभासद, केपन, पारसनीस द्वारा भी प्रथम श्रेणी के शिवाजी-विरोधी सरदारों के नामों की सूचियां दी गई हैं। शिवाजी का कार्य यदि 'धर्म-कार्य' था तो फिर क्यों उस कार्य का विरोध उन धर्मप्रिय मराठा सरदारों ने किया? सरदेसाई बताते हैं, "उन्हें अपना क्षेत्र हाथ से निकल जाने का भय था।" उनके हाथ में क्या था? बखरकार केपन अपनी मराठी की बखर में कहते है शिवाजी 'नाशकर्ता' था। उन्होंने क्या बर्बाद किया? उसका विवरण बखरकार देता है—"बीजापुर का जो प्रदेश शिवाजी के हाथों में आया था, उसमें पूर्व प्रचलित मुखियाओं की प्रथा समाप्त करके, हर साल (जमीन पर खड़ी फसल) की जांच-पड़ताल के आधार पर लगान देना होता था।"

यह व्यवस्था बहुत स्पष्ट थी, अतः किसका नाश किया गया, यह स्पष्ट

है। शिवाजी ने बटाईगिरी (कृषि की ठेकेदारी) समाप्त की, इसलिए क्रोधित होकर बखरकार और भी एक सच्चाई लिख गया। वह कहता है, "इस कारण प्रजा का हित होना सम्भव हुआ।"[27]

शिवाजी ने किसे बर्बाद किया और किसे लाभ पहुंचाया, यह स्पष्ट है।

अपने स्वार्थ पर चोट के कारण ही घाटगे, खण्डागले, बाजी घोरपडे, बाजी मोहिते, निम्बालकर, डबीर, मोरे, बादल सावन्त, सुर्वे, खोपड़े, पांढरे, कोंकण के देसाई, मावल के देशमुख आदि, प्रमुख मराठा हिन्दू सरदार शिवाजी का विरोध करते थे। शिवाजी के बहुत ही निकट सम्बन्धी व्यंकोजी भोसले और मंबाजी भोसले भी उनके विरोधी थे। मां की ओर से शिवाजी के नबासे जगदेवराव जाधव, रथोजी माने भी उनके विरोधी थे। स्वाधीन राज्य पर आक्रमण करने के लिए शाहिस्ते खान आया, तो उसके साथ औरंगजेब के उत्तर के हिन्दू सरदारों का आना स्वाभाविक था, परन्तु महाराष्ट्र के सुखाजी गायकवाड़, दिनकरराव कांकड़े, रम्भाजीराव पंवार, सर्जेराव घाटगे, कमलोजीराव काकड़े, त्र्यंबकराव खण्डागले, कनकोजीराव गाडे, अन्तोजीराव खण्डागले, दत्ताजीराव खण्डागले आदि मराठा सरदार भी थे। इससे बड़ी बात यह थी कि त्र्यम्बकरावजी भोसले, शिवाजीराव भोसले, बालाजीराव भोसले, परसोजीराजे भोंसले आदि भोसले खानदान का शिवाजी के साथ रिश्ता था। शाहिस्ते खान की सेना में सिन्धखेड़ के दत्ताजीराजे जाधव और रुस्तमराव जाधव भी थे। यह जाधव खानदान, शिवाजी की माता जीजाबाई के मायके से सम्बन्ध रखता था। पुणे की जागीर के लालच में, लोनी के कृष्णाजी कालभोर, खान के साथ मिल गये थे। खान के शितोले की जागीर छीन कर कालभोर को दे दी गयी थी। बालाजी होनप पुणे में लाल महल के समीप ही रहते थे। स्वाधीन राज्य की छत्रछाया में रह कर भी बालाजी होनप को शिवाजी की तुलना में शाहिस्ते खान समीपतर लगा। तो ऐसे थे ये देशवासी, ऐसे हिन्दू थे, ऐसा था उनका देशप्रेम, और ऐसी थी उनकी धर्मनिष्ठा।

स्पष्ट है कि उनकी निष्ठा जागीरों के प्रति थी। गौरवपूर्ण अपवाद था तो वह था कान्होजी जेधे का।

उन जागीरदारों के सम्बन्ध में स्वयं शिवाजी महाराज का दृष्टिकोण बहुत स्पष्ट और उतना ही कठोर था। उनके सम्बन्ध में अमात्य ने कहा है, "शक्तिशाली होना, दूसरों को हड़पना, अधिकार जता कर लूटना जिनकी सहज लालसा हो वे दूसरों का आक्रमण होने पर जागीरदारी के लालच में पहले ही समझौता कर लेते हैं। स्वयं ही मिलने पहुंचते हैं। इधर के भेद उधर और उधर के

Scanned with CamScanner

इधर पहुंचा कर शत्रुओं को राज्य में घुसाते हैं—देश का विध्वंस करते हैं।''[28]

उन जागीरदार सरदारों की दृष्टि में, उनकी जागीरें महत्वपूर्ण थीं। धर्म महत्वपूर्ण नहीं था। उनकी जागीर के प्रति निष्ठा सर्वोपरि थी। धर्मनिष्ठा का महत्व नहीं था।

शिवाजी की आस्था

इसका मतलब कदापि यह नहीं है कि शिवाजी धर्म मानते ही न थे, या वह धर्मनिरपेक्ष थे, अथवा उन्होंने अपने राज्य को धर्मनिरपेक्ष राज्य घोषित किया था। शिवाजी हिन्दू थे। उनकी धर्म में आस्था थी। एक आस्थावान व्यक्ति के अनुरूप उनका आचरण था। वह देवी-देवताओं और साधु-मुनियों की पूजा करते थे। धर्म और मन्दिरों के लिए दान-दक्षिणा देते थे और उनका खर्च उठाते थे।

परन्तु क्या वह इस्लाम धर्म के विरोधी थे? उनकी हिन्दू धर्म में आस्था थी, इसीलिए क्या वह मुस्लिम धर्म से घृणा करते थे? क्या उनका इरादा और प्रयास मुसलमानों का 'हिन्दुकरण' या 'मराठीकरण' या 'महाराष्ट्रीयकरण' करने का था?

इतिहास संगत ईमानदारी से कहा जाये, तो इन समस्त प्रश्नों के उत्तर 'नहीं' में होंगे।

शिवाजी द्वारा सूरत को लूटने की घटनाओं का ब्यौरा उपलब्ध है। जुन्नर के बाजार हाट को लूटने और दूसरी इसी प्रकार की लूटों का वर्णन मिलता है। परन्तु इतिहास में शिवाजी द्वारा एक भी मस्जिद गिराये जाने सम्बन्धी टिप्पणी है? किसी ऐसी मस्जिद को गिरा कर पुनः मन्दिर बनाने के सम्बन्ध में कोई उल्लेख है जहां मूल रूप से स्थित मन्दिर को गिरा कर उसे मुसलमानों ने मस्जिद में परिवर्तित किया था? बिल्कुल नहीं। इसके विपरीत उनके द्वारा मस्जिदों को दान और इनाम दिये जाने के उल्लेख अवश्य मिलते हैं।[29]

सभासद कृत बखर में से यह उद्धरण देखिये—"प्रदेश में स्थान-स्थान पर ईश्वर और ईश्वर के आराधना स्थल थे। उनके लिए दिया बत्ती, होम-नैवेद्य, अभिषेक आदि का निरीक्षण कर उनका प्रबन्ध किया। स्थानानुसार मुसलमानों के धर्मगुरु, मस्जिदों, उनकी दियाबत्ती, धूप लोबान का खर्च दिया।''

जो बात मस्जिदों के सम्बन्ध में सच थी वही बात उनके पीर-फकीरों के सम्बन्ध में भी सच थी। उस युग में शिवाजी और उनके समकालीन अन्य मराठा-हिन्दू, दरगाहों का गुणगान करते और उन्हें उपहार देते थे। मुस्लिम साधु, पीर-

फकीरों का सम्मान करते थे। कइयों को शिवाजी महाराज गुरू मानते थे, उनमें एक मुस्लिम सन्त 'याकूत बाबा' भी शामिल थे।

इतिहास में शिवाजी महाराज का मुस्लिम धर्म सम्बन्धी उदार भाव कई प्रकार से दर्ज है। मुस्लिम इतिहासकार शाफीखान द्वारा लिखित निम्न उद्धरण स्वयं इसका प्रमाण है—

सेना के लिए शिवाजी ने कठोर नियम बनाये थे कि, जहां-जहां सिपाहियों को लूट करने जाना हो वहां-वहां मस्जिद, कुरआन या किसी भी महिला को नुकसान या पीड़ा नहीं पहुंचनी चाहिए। यदि कुरआन की प्रति मिलती तो नतमस्तक होकर उसे मुसलमान नौकर के हवाले कर दिया जाता था, कभी भी हिन्दू या मुसलमान महिलाएं हाथ आतीं और यदि उनकी सुरक्षा के लिए कोई उपलब्ध नहीं होता तो उनको लिवा लेने जाने के लिए उनके रिश्तेदारों के आने तक, स्वयं शिवाजी उनकी देखभाल करते थे।[30]

2 नवम्बर 1669 के पत्र में रघुनाथ पंडित राव ने राजा के आदेश का जो उल्लेख किया है, वह तो इससे भी अधिक स्पष्ट है।

श्रीमन्त महाराज राजे ने आदेश जारी किया कि जिनका जो धर्म है वह उसके अनुसार आस्था रख सकता है, उसमें किसी का दखल नहीं होना चाहिए।[31]

मुस्लिम धर्म के विरोध में जो भी कोई अपने विचारों का प्रचार करने के लिए, शिवाजी के नाम का इस्तेमाल कर रहे हों या करें, उन्हें उपरोक्त ऐतिहासिक आदेश का जवाब देना पड़ेगा। यदि किसी का मुस्लिम विद्वेष कहीं बिक सकता हो तो वह उसे अपने नाम से बेचे। अपने माल को शिवाजी की छाप लगाकर न खपाये।

उसी प्रकार वर्तमान मुस्लिम धर्मानुयायियों को चाहिए की शिवाजी के तथाकथित आचरण और भाषण के आधार पर, शिवाजी की छवि कायम न करें। उन्हें चाहिए कि वह शिवाजी का इतिहास देखें, मुस्लिम धर्म सबन्धी शिवाजी का दृष्टिकोण समझें और तभी अपनी राय बनायें।

शिवाजी स्वयं हिन्दू थे और धर्मावलम्बी थे परन्तु उन्होंने अपने राज्य के निवासियों का धर्म के आधार पर विभाजन नहीं किया और मुसलमानों से धर्म के आधार पर भिन्न व्यवहार नहीं किया। जिस प्रकार हिन्दुओं को इस ओर ध्यान देने की आवश्यकता है उसी प्रकार मुसलमानों को भी यह बात याद रखनी चाहिए। जिस प्रकार मुस्लिम सम्प्रदाय में अकबर के समान सर्वधर्म का

Scanned with CamScanner

आदर करने वाले राजा हुए, उसी तरह हिन्दुओं पर एकांगी धार्मिक-कर (जजिया) लादने वाले औरंगजेब जैसे पक्षपाती राजा भी हुए।

धर्मान्ध मुल्ला-मौलवियों की सलाह पर औरंगजेब ने धार्मिक कर जारी किया। उस कर के विरोध में बगावत हुई। उस समय शिवाजी महाराज ने औरंगजेब के नाम फारसी में एक पत्र भेजा था। उस पत्र के विवरण से स्वधर्म और पराये धर्म के सम्बन्ध में शिवाजी का दृष्टिकोण विस्तृत रूप से स्पष्ट होता है।

अपने पत्र में शिवाजी लिखते हैं कि, औरंगजेब ने गरीब और मासूम प्रजा से धार्मिक कर वसूल करने की जो नीति अपनायी है, वह इस्लाम सम्प्रदाय के मूलभूत सिद्धान्तों के विपरीत है। औरंगजेब के परदादा अकबर बादशाह ने 52 साल शासन किया। उस कालावधी में सब को न्याय दिया। अतः उन्हें जनता ने जगदगुरु का सम्मान दिया। उनकी यही नीतियां, आगे चल कर बादशाह जहांगीर और शाहजहां ने जारी रखीं। उनकी इस नीति के कारण उन्हें विश्वव्यापी प्रसिद्धि मिली। वे बादशाह सहज ही में धार्मिक कर वसूल कर सकते थे परन्तु उन्होंने ऐसा नही किया। परिणामस्वरूप उन्हें अकूत नेकनामी और पैसा मिला। उनके राज्य का विस्तार होता रहा। परन्तु औरंगजेब के शासन में, हिन्दू और मुसलमान सिपाही दुखी हैं। अनाज के दाम बढ़ गये हैं। ऐसी परिस्थिति में, गरीब ब्राह्मण, जोगी, बैरागी, जैन साधु और संन्यासियों से धार्मिक कर वसूलना मानवता नहीं है। इससे मुगल वंश के नाम पर बट्टा लगेगा।

शिवाजी आगे लिखते हैं, कुरआन स्वयं ईश्वर वाणी है, वह रुहानी किताब है, उसमें अल्लाह को विश्व का ईश्वर कहा गया है। 'मुसलमानों का ईश्वर' नहीं बनाया गया, क्योंकि हिन्दू और मुसलमान दोनों ईश्वर के समक्ष एक हैं। मुसलमान लोग मस्जिदों में अजान देते हैं, वह ईश्वर का ही गुणगान है, और हिन्दू लोग भी मन्दिरों मे भजन गाते हैं, वह ईश्वर का ही गुणगान है, और मन्दिरों में घड़ियाल बजा कर खुदा को ही याद करते हैं, अतः जाति-सम्प्रदाय पर अत्याचार करना, भगवान से शत्रुता करना है। धार्मिक कर जारी करना शास्त्र और न्याय दोनों दृष्टिकोणों से गलत है।

इसी कारण शिवाजी ने औरंगजेब को लिखा कि उसे विवेक नहीं खोना चाहिए। इससे पूर्व, गुजरात के सुलतान ने, इसी प्रकार विवेक खो दिया था तो उसका परिणाम बुरा हुआ। बादशाह का भी यही परिणाम होगा क्योंकि जिस प्रकार कोई भी ज्वलनशील वस्तु आग के सम्पर्क में आने से नष्ट होती है, उसी प्रकार प्रजा में व्याप्त असन्तोष के कारण, शासन समाप्त होता है। मनुष्य

को अकारण छेड़ने से उत्पन्न होने वाली विद्रोह की ज्वाला, लाक्षा से भी जल्दी सम्पत्ति को राख में बदल सकती है। अतः अपने मन में सम्प्रदाय और जाति का विकल्प रख कर भी किसी प्रकार का अत्याचार नहीं करना चाहिए, क्योंकि शासनाधीन प्रजा कीड़े-मकोड़ो की तरह दीन है। लेकिन यदि हिन्दू जनता को दुःख पहुंचाया गया तो उनकी विद्रोहाग्नि से पूर्ण साम्राज्य नेस्तनाबूद हो जायेगा।[32]

भारतवासियों की दृष्टि में यहां शिवाजी ने एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त प्रतिपादित किया : धर्म के आधार पर अकबर या अन्य बादशाहों ने भारतीय जनता से छल नहीं किया; उनकी उदार धार्मिक नीतियों के कारण ही, अकबर को जगदगुरु कह कर सम्बोधित किया गया, परन्तु गरीब और निर्दोष लोगों पर कर लाद कर औरंगजेब इस्लाम धर्मविरोधी कार्य कर रहा है, क्योंकि कुरआन ईश्वर की वाणी है, और ईश्वर के समक्ष हिन्दू और मुसलमान दोनों एक हैं; यदि प्रजा को राजा पीड़ा पहुंचाये तो, राजा चाहे कितना भी शक्तिशाली क्यों न हो, उसकी हार सुनिश्चित है।

जनजीवन पर धर्म के असीम प्रभाव को देखते हुए यदि शिवाजी के युग पर गौर किया जाये तो शिवाजी की ये नीतियां और उनके विचार असाधारण ही थे। शिवाजी ने यह महत्वपूर्ण सिद्धान्त प्रस्थापित किया कि अपने सम्प्रदाय जितना ही अन्य धर्म भी श्रेष्ठ है, और उनकी उपासना पद्धतियां भिन्न-भिन्न होने पर भी उनका उद्देश्य एक ही है। अकबर, दारा शिकोह, इब्राहिम आदिलशाह आदि के विचार भी इससे भिन्न नहीं थे।

शिवाजी धर्मपरायण राजा थे। उन्हें हिन्दू धर्म पर गर्व था और उन्होंने हिन्दू मन्दिरों और ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा दी, यह सच है। परन्तु उनका हिन्दू धर्माभिमान, अन्य सम्प्रदायों के प्रति द्वेष भावना पर आधारित नहीं था। उन्होंने कभी यह नहीं सोचा कि मुसलमानों से द्वेष किये बगैर स्वयं सच्चा हिन्दू बनना सम्भव नहीं है। इसका कारण यह है कि मध्य युग में भी उनकी धर्म की समझ काफी स्पष्ट थी।

❑❑❑

Scanned with CamScanner

4. शिवाजी और ब्राह्मण-96 कुली-कुलवाड़ी-शूद्र

छत्रपति शिवाजी के नाम के साथ जो विशेषण लगाये जाते हैं उनमें 'गौ-ब्राह्मण रक्षक' प्रसिद्ध है। उन्हें अक्सर गौ और ब्राह्मणों का पालनहार कहा जाता है।

शिवाजी महाराज के कई प्रामाणिक पत्र उपलब्ध हैं। उनमे से एक भी पत्र में शिवाजी महाराज ने स्वयं को 'गौ-ब्राह्मण रक्षक' नहीं कहा। शिवाजी के समकालीनों द्वारा लिखे गये पत्र भी हैं। उनमें से एक भी पत्र में किसी ने शिवाजी को 'गौ-ब्राह्मण रक्षक' कह कर नहीं बुलाया। इसके विपरीत, शिवाजी महाराज के राज्याभिषेक वर्ष के 29 पत्र उपलब्ध हैं। इन सभी पत्रों में शिवाजी स्वयं को 'क्षत्रिय कुलोत्पन्न श्री राजा शिव छत्रपति' कहते हैं। वह स्वयं को 'गौ-ब्राह्मण रक्षक' नहीं कहलवाते, फिर यह विशेषण कहां से आया?

श्री. बी. एम. पुरन्दरे लिखते हैं कि शिवाजी स्वयं को 'गौ-ब्राह्मण रक्षक' कहलवाते थे, और **शिवाजी चरित्र साधन**, खण्ड 5, क्रम 534 और 537 को इसके प्रमाणस्वरूप पेश करते हैं। इन सब पत्रों और आधारों की छानबीन के बाद, श्री शेजवलकर निर्णय देते हैं कि क्रमांक 534 के लेख में, शिवाजी स्वयं को 'गौ-ब्राह्मण रक्षक' नहीं कहलवाते, परन्तु उस पत्र में जिसका उल्लेख है, वह ब्राह्मण उन्हें यह उपाधि देता है। क्रमांक 537 के लेख में तो 'गौ-ब्राह्मण रक्षक'[33] शब्द का उल्लेख ही नहीं है। इसका मतलब है सब कुछ झूठ है। इसमें स्पष्ट अन्तर है कि शिवाजी ने स्वयं को 'गौ-ब्राह्मण रक्षक' कहलवाया या ब्राह्मण ने उन्हें इस तरह संबोधित किया। काम करवाने हेतु राजा के पास पहुंचने वाला या याचिका प्रस्तुत करने हेतु जाने वाला कोई भी

व्यक्ति, राजा से यह कहे कि 'तू हमारा पालनहार है' तो इसमें विशेष बात क्या है?

तो फिर शिवाजी के नाम के साथ लगी हुई या बाद में जबर्दस्ती चिपकाई गई ये उपाधियां कहां से आयीं?

स्वयं की कार्य-सिद्धि के लिए, ऐतिहासिक महापुरुषों के नामों के साथ अपनी सहूलियतों के अनुसार विशेषण लगाने को अधिक से अधिक होशियारी या चालाकी कहा जा सकता है। भोले-भाले आम लोग बात की जड़-मूल तक नहीं पहुंचते और उसे यूं ही अपना लेते हैं। परन्तु इस कारण कोई बात सच नहीं बन जाती, इतिहास नहीं बन जाती।

ग्रान्ट डफ ने अपनी पुस्तक में दर्ज किया है "गौ, प्रजा और महिलाओं की लूट से शिवाजी ने अपने सिपाहियों को प्रतिबंधित किया था"। इस बात के और भी कई आधार हैं।[34]

फिर गौ, प्रजा और महिलाओं के रक्षक इस शिवाजी का गौ-ब्राह्मणों के पालनहार कैसे बना दिया गया? प्रजा और महिलाओं को दरकिनार कर उस स्थान पर ब्राह्मण कब और किसने रख दिया, इसका अनुमान लगाना कठिन नहीं है।

शिवाजी के शासन में, ब्राह्मणों के लिए विशेष रियायतें दी गयी हों ऐसा कहीं दिखायी नहीं देता। इसके विपरीत, एक पत्र में ब्राह्मणों के सम्बन्ध में शिवाजी महाराज लिखते हैं "कौन ब्राह्मण कह कर छूट पाना चाहता है?..." और धमकी देते हैं कि "जो छापामारों के छापामार हैं उनको वैसा ही परिणाम भुगतना पड़ेगा"।[35]

जिस प्रकार सभी मराठे शिवाजी महाराज के पक्ष में नहीं थे उसी प्रकार सभी ब्राह्मण, शिवाजी महाराज के पक्षधर नहीं थे। कई उनके विरोधी थे और इसलिए भी शिवाजी महाराज द्वारा 'ब्राह्मण रक्षक' की उपाधि ग्रहण करना सम्भव नहीं था, न तो उन्होंने ऐसा किया ही।

शिवाजी के युग में, दान-दक्षिणा झपटने के लिए ब्राह्मणों द्वारा 'कोटि चण्डी यज्ञ' किये जाने का एक मनोरंजक उल्लेख शिवाजी-साहित्य में मिलता है। जब दिल्ली के शहंशाह के शक्ति-सम्पन्न-सरदार, मिर्जा राजे जयसिंह शिवाजी महाराज को पूरी तरह परास्त करने के लिए महाराष्ट्र पहुंचे तो उस समय उन्हें शिवाजी के विरुद्ध विजयश्री दिलाने हेतु, महाराष्ट्र निवासी ब्राह्मणों द्वारा 'कोटि चंडी यज्ञ' किया गया था। यह प्रसंग इस प्रकार है—

Scanned with CamScanner

मिर्जा राजे जयसिंह चिन्ताग्रस्त था। शिवाजी बहुत जुझारू, बड़े हुनरमंद और बांके बहादुर। खालिस सिपाही का शरीर-सौष्ठव, उनके हाथों अफजल खान जान से मारा गया था। शाहिस्ते खान के डेरे में घुस कर मारकाट की। वह चिन्ता में मगन कि विजय किस प्रकार मिलेगी। तब बड़े-बड़े ब्राह्मण पुरोहितों ने उपाय बताया कि देवी के नाम पर अनुष्ठान करने से विजय प्राप्त होगी। फिर मिर्जा ने कहा, कोटि चण्डी यज्ञ किया जाय, ग्यारह करोड़ शिवलिंग बनाये जाये, मनोकामना पूरी करने के लिए बगलामुखी काल रात्री हेतु जाप किया जाये। इस प्रयोजन से 400 ब्राह्मणों को अनुष्ठान के लिए बैठाया गया। अनुष्ठान चलता रहा। अनुष्ठान के लिए 2 करोड़ रुपया अलग से रखा गया। तीन माह तक अनुष्ठान चलाकर सिद्धि प्राप्त की गयी। अनुष्ठान की पूर्णाहुति के बाद, ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा दी गई। फिर रवानगी हुई।

शिवाजी यदि ब्राह्मण प्रतिपालक थे और शिवाजी का शासन यदि ब्राह्मण और हिन्दू धर्म को सुरक्षा प्रदान करता था, तो क्या ब्राह्मण उनके विरुद्ध 'कोटि चण्डी यज्ञ' करते?[36]

छत्रपति के राज्य अभिषेक पर ब्राह्मणों का विरोध

इस सच्चाई को सब जानते हैं कि महाराष्ट्र निवासी ब्राह्मण धुरंधरों ने, शिवाजी महाराज के राज्य अभिषेक का विरोध किया था। चतुर्वर्ण प्रथा और धर्मशास्त्र के अनुसार, राजा बनने का अधिकार केवल ब्राह्मणों या क्षत्रियों को ही प्राप्त था। शिवाजी वीर थे और उन्होंने राज्य प्राप्त कर लिया था, तो भी उनमें राजा बनने की पात्रता नहीं थी—ऐसा धर्मविचार था। कुछ को उनके क्षत्रिय होने में शंका थी और बाकी मानते थे कि वह क्षत्रिय कुलोत्पन्न तो थे, फिर भी 'संस्कारहीन' होने के कारण क्षत्रिय नहीं रहे थे। शिवाजी का यज्ञोपवित नहीं हुआ था। मन्त्रोच्चार विधि के साथ विवाह नहीं हुआ था, फिर शिवाजी राजा कैसे बन सकते थे?

कुछ पुरातनपंथी, धर्म के ठेकेदारों के विचार इससे भी कठोर थे, वे कहते—'नन्दांतम् क्षत्रिय कुलम्', नन्द राजा अन्तिम क्षत्रिय था, नन्द राजा की मृत्यु के बाद कोई क्षत्रिय बचा ही नहीं। अकबर के युग में कृष्ण भट्ट शेष ने 'शूद्राचार शिरोमणि' नामक एक ग्रन्थ की रचना की थी। उसने प्रतिपादित किया कि परशुराम ने समस्त भूतल से पूर्णतया क्षत्रियों को समाप्त कर दिया था। अब हिन्दू धर्म में राजसी तेज और राजवंशीय क्षत्रिय कोई बचा ही नहीं था। फिर शिवाजी का राज्य अभिषेक कैसे हो सकता था?[37]

महाराष्ट्र निवासी विद्वान ब्राह्मणों में से कोई भी शिवाजी का राज्य अभिषेक करने को तैयार नहीं था, अतः बनारस से गंगाभट्ट आया और उसने वैदिक धर्म परंपरा के अनुसार, पूर्ण धार्मिक विधि से उनका राज्य अभिषेक किया। वैसे गंगाभट्ट का मूल परिवार नान्देड का था, ज्ञान-ध्यान बनारस में प्राप्त किया था। परन्तु उसे और अन्य ब्राह्मणों को राजा ने दिल खोल कर दक्षिणाएं दीं। कुछ अतिशयोक्ति हो सकती है परन्तु एक विवरण ऐसा भी है कि राज्य अभिषेक के अवसर पर ब्राह्मणों को राजा ने दान में इतना सोना दिया कि उसे किले से नीचे ढोकर लाना मुश्किल हो गया था।

शिवाजी के ब्राह्मण सहयोगी

शिवाजी महाराज के राज्य अभिषेक का महाराष्ट्र के ब्राह्मणों ने विरोध किया या मिर्जा राजे जयसिंह के विजय की कामना करते हुए उन्होंने कोटि चण्डी यज्ञ किया, इससे यह निष्कर्ष निकालना पूर्णतः गलत होगा कि महाराष्ट्र निवासी सभी ब्राह्मण शिवाजी-विरोधी थे।

यह प्रश्न केवल इस या उस ब्राह्मण समाज, व्यक्ति या उन पुरोहितों का नहीं था। मूल प्रश्न था चातुर्वर्ण धर्म का, जो आज भी कायम है। शूद्रों का जन्म प्रजापति के पैरों की धूल से हुआ माना गया है अतः उनका धार्मिक कर्तव्य तीनों वर्णों की सेवा बताया गया है। धार्मिक विधान है कि शूद्र राजा नहीं बन सकते। राजा ईश्वर का अंश होता है, और शूद्रों में ईश्वर का अंश होना संभव नहीं। अतः धर्म का आग्रह है कि शूद्र का राजा बनना असंभव है। सनातन हिन्दू धर्म रीति है कि मुसलमान राजा बन सकता है परन्तु शूद्र राजा नहीं बन सकता। अतः शिवाजी महाराज के राज्य अभिषेक को धर्म-विरोधी माना गया। फिर भी, अनेक ब्राह्मण शिवाजी के स्वाधीन राज्य के कार्य में सहयोगी थे। दादाजी कोण्डदेव तो उनके गुरु ही थे। रामदास ने, शिवाजी को उपदेश देकर उनका मार्गदर्शन किया था या नहीं, इस पर भारी मतभेद है। मोरोपन्त पिंगले तो पेशवा पद पर विराजमान ही थे। वह एक प्रमुख मंत्री थे। मोरोपन्त, अनाजी दत्तो और दत्ताजी त्रिम्बक मंत्री तो थे ही, बहुत कुशल वीर भी थे। इतिहास में दर्ज है कि शिवाजी के आगरे से छुटकारे की रोमांचक घटना में, महाराष्ट्रीय ब्राह्मण, त्र्यम्बकपन्त डबीर और रघुनाथपन्त कोरडे, बनारस के कृष्णाजी और उत्तरीय ब्राह्मण विसाजी ने बहुमूल्य सहयोग दिया था।

Scanned with CamScanner

प्रश्न केवल ब्राह्मणों का नहीं था, सनातन हिन्दू धर्म का था, तत्कालीन मर्यादाओं का था, और उन मर्यादाओं को शिवाजी ने भी स्वीकार किया और मान्यता दी। अतः पहली दृष्टि में हास्यास्पद दिखने वाली घटनाएं उस युग में आम थीं।[38]

'संस्कार क्षय' आदि आरोपों के जवाब में गंगाभट्ट ने 44 वर्ष की आयु में शिवाजी महाराज का यज्ञोपवित किया। विधि विधान और मन्त्रोच्चार के साथ उनका दोबारा विवाह कराया गया। दान-दक्षिणा के रूप में लाखों सोने की मुहरों की बर्बादी हुई और फिर राज्य अभिषेक हुआ।

शिवाजी को 'हिन्दू धर्म संरक्षक' की उपाधि देने वाले, वर्तमान सभी स्वार्थी धर्मान्ध, यह न भूलें कि इसी हिन्दू धर्म और इसके ठेकेदारों ने शिवाजी के राज्य अभिषेक का विरोध किया था और 44 वर्ष की आयु में जनेऊ और विवाह को दोबारा कराने जैसी हास्यास्पद बातें करवाई थीं।

जिस प्रकार प्रत्येक महामानव को समय और परिस्थितियों की मर्यादाओं का पालन करना होता है, हिन्दूधर्मी शिवाजी को भी तत्कालीन मर्यादाओं का पालन करना पड़ा।

जोश में वस्तुस्थिति को अनदेखा कर कई बार शिवाजी को कालातीत सम्मान प्रदान कर दिया जाता है। शिवाजी का राज 'धर्मनिरपेक्ष राज्य' था, शिवाजी सच्चे 'समाजवादी' थे आदि, हास्यास्पद बातें भी कुछ लोग कहते हैं। स्पष्ट है कि यह सच नहीं है। सामन्ती समाज व्यवस्था के युग में स्वयं एक राजा बने शिवाजी का धर्मनिरपेक्ष रहना संभव नहीं था, समाजवादी रहना असंभव था। समकालीनों की तुलना में शिवाजी कितने गहन विचार रखते थे यह महत्वपूर्ण है। विशेष है कि उस परिस्थिति में उन्होंने कितनी दूरदृष्टि दिखायी, और परिस्थिती के अनुसार कितने प्रगतिशील कदम उठाये। राजा रहते हुए भी प्रजा का किस प्रकार मूल्यांकन किया, महत्व इस बात का है।

प्रायः सर्वविदित है कि, ज्येष्ठ सुदी तेरस शक 1586 यानि 6 जून 1674 को शिवाजी महाराज का प्रथम राज्य अभिषेक रायगढ़ किले में हुआ था। परन्तु एक बार और राज्य अभिषेक हुआ था। वह प्रथम राज्य अभिषेक के लगभग तुरन्त बाद ही, तीन माह की अवधि में, 'ललिता पंचमी' के दिन यानि 'अघन सुदी पंचमी' को हुआ।

निश्चलपुरी गुसाई नामक कोई 'यजुर्वेदी तांत्रिक' था। प्रथम राज्य अभिषेक के बाद वह शिवाजी महाराज से मिला। इस बीच प्रथम राज्य अभिषेक के 13 दिन बाद, शिवाजी की माता जीजाबाई का देहावसान हो गया। शिवाजी के सेनानायक प्रतापराव गुर्जर की मृत्यु हो गयी। शिवाजी की एक पत्नी श्रीमती काशीबाई परलोक सिधार गयीं। निश्चलपुरी का मत था कि प्रथम राज्य अभिषेक के समय गंगाभट्ट ने भूलें की थीं इसलिए यह सब हुआ। उसका मत था कि गंगाभट्ट ने मुहूर्त ठीक नहीं निकाला था, देवी-देवताओं को प्रसन्न नहीं किया था, उन्हें बलि नहीं चढाई थी, इसीलिए उपरोक्त विपत्तियों ने उन्हें आ घेरा था।

शिवाजी महाराज और उनके सलाहकार आस्था वाले और धर्म-भीरु लोग थे। वे सभी तत्कालीन जानकारियों और ज्ञान की सीमाओं से बंधे थे। उन्होंने निश्चलपुरी के कथन को सच माना और शिवाजी का दुबारा राज्य अभिषेक हुआ। और फिर बचे-खुचे देवी-देवताओं के लिए यज्ञ किया, दान किया और उन्हें सन्तुष्टि प्रदान की गयी। ब्राह्मणों को फिर से दक्षिणाएं दी गयी।[39] एक ही व्यक्ति का दो बार राज्य अभिषेक होने की घटना दूसरी नहीं सुनने में आती।

दो-दो बार राज्य अभिषेक तथा दो-दो बार देवी-देवताओं और ब्राह्मण पुरोहितों की सन्तुष्टि के उपरान्त भी कोई लाभ हुआ हो ऐसा नहीं दिखता। राज्य अभिषेक के बाद शिवाजी लगभग 6 वर्ष तक ही जीवित रहे, और एक प्रकार से उनकी अकाल मृत्यु हो गयी।

तात्पर्य केवल यह है कि उन दोनों राज्य अभिषेकों का समय और तत्कालीन जानकारियों की सीमाओं को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

'९६ कुल'वालों का शिवाजी विरोध

ऐसा नहीं है कि उस समय शिवाजी महाराज को शूद्र या 'नीच जाति का' समझने वालों में केवल महाराष्ट्र के ब्राह्मण ही थे। स्वयं को क्षत्रिय कहने वाले 96 कुल के क्षत्रिय मराठा सरदार भी, शुरू-शुरू में शिवाजी का 'राजा' का अधिकार स्वीकार नहीं करते थे। इन घमण्डी कुलों के 96 नाम हैं। उनमें 'भोसले' नाम शामिल नहीं है।

अभी भी जात-पात देख कर, रिश्तेदारी निश्चित करने वाले और स्वयं को उच्चकुलीन समझने वाले लोग 'भोसले' कुलनाम के मराठों को हीन समझते हैं।

Scanned with CamScanner

उस युग में, लगभग सभी 96 कुलों के मराठे स्वयं को 'राजे' कहलवाते थे, शिन्दे राजे, मोरे राजे आदि, हालांकि उनकी रियासतें नहीं थीं। नगर जिला और उसके अड़ोस-पड़ोस में अभी भी लगभग सभी मराठे (और कुछ अन्य भी) स्वयं के कुलनाम के बाद पाटील (पटेल) का प्रयोग करते हैं। लांडगे पाटील, कोल्हे पाटील, काले पाटील, विखे पाटील, आदि सभी पाटील हैं।

स्वयं को राजे कहलवाने वाले 96 कुलों के मराठे, शिवाजी के साथ कैसा व्यवहार करते थे? इसकी एक कहानी है। जाबली के मोरे बीजापुर दरबार में एक सरदार थे। उन्हें 'राजे' कहा जाता था और उसमें भी उनकी उपाधि 'चन्द्रराव' थी। शिवाजी ने प्रयास किया कि जाबली के मोरे भी शिवाजी के स्वाधीन राज्य में सम्मिलित हों। पत्र दिये, दूत भेजे। कोई कान देने के लिए तैयार नहीं था। तब धमकी भरा सन्देश भेजा गया तथा संकेत दिया गया कि, यदि बात न मानी गई तो जाबली पर कब्जा कर लिया जायेगा और उन्हें बन्दी बना लिया जायेगा। उस पत्र में, शिवाजी ने 'राजे' कहकर स्वयं को संबोधित किया था। पत्र के जवाब में मोरे द्वारा तिरस्कार भरा जबाब आया। मोरे कहते हैं "आप कैसे राजे? आप स्वयं को राजा कहलवाते हैं इसलिए आप राजे? आप यदि भोजन कर रहे हों, तो तुरत-फुरत जाबली पहुंच कर हाथ धोइये। होने दिजिए हमारे बीच दो-दो हाथ"।

शिवाजी ने मोरे की अभिलाषा पूरी की। युद्ध किया और जाबली पर विजय पायी। यह प्रसंग अलग है। कहने का मतलब यह कि जाबली के मोरे स्वयं को तो राजे कहलवाते थे परन्तु शिवाजी को 'राजा' स्वीकार करने को तैयार नहीं थे।

संक्षेप में, उच्च वर्णीय ब्राह्मण हो या उच्च वर्णीय मराठा, शुरू-शुरू में वे शिवाजी को राजा स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे।

चातुर्वर्ण रचना की, वर्ण के श्रेष्ठत्व की पीड़ा शिवाजी को भुगतनी पड़ी। वह धर्मानुयायी थे इसलिए उन्होंने विकल्प निकाला। राज्य अभिषेक करवाया। शक्ति, वीरता और दांव-पेचों से स्थापित राज्य के वह राजा थे। औरंगजेब भी उन्हें स्वीकार करता था, परन्तु हिन्दू धर्म उन्हें मान्यता नहीं देता था। परिणामस्वरूप शिवाजी को राज्य अभिषेक करवाना पड़ा। धर्म से मान्यता लेनी पड़ी।

कुलवाड़ी का गौरव

महात्मा ज्योतिराव फुले ने शिवाजी पर एक पोवाड़ा (लोकगीत) की रचना की है। इस लोकगीत में वह शिवाजी को 'कुलवाड़ी भूषण' कहते हैं। लोकगीत के अंत में वह कहते हैं 'शूद्र के पूत'[40] का गान ज्योतिराव फुले ने गाया, जिसका अर्थ है शिवाजी भोसले 'शूद्र के बेटे' थे, कुलवाडी थे। महात्मा फुले न तो इतिहास के रचयिता थे न ही इतिहासकार। वह समानता के प्रचारक और सुधारवादी थे। हो सकता है अपने लोकगीत में उन्होंने शिवाजी के सम्बन्ध में ऐसा कहा हो, जिसे आधारहीन माना जा सकता है। शोधकर्ताओं में भी इस विषय पर मतभिन्नता दिखायी देती है, चाहे वे इसे खुलकर बोलते व लिखते न हों।

शिवाजी के परिवार का पूर्व इतिहास

शिवाजी के राजपूत होने के बारे में कई उल्लेख हैं और उनके विभिन्न आधार हैं। एम. एम. दत्तो वामन पोतदार, जिन्होंने इनका अध्ययन किया, लिखते हैं, इसमें बहुत ही रुकावटें आती हैं। उसके बाद की अवस्था का यानि निश्चित रूप से शाहू महाराज के पूर्व के वृतान्त से ऐसा जान पड़ता है कि इस सम्बन्ध में उदयपुर से खोजबीन कर जानकारी प्राप्त की गयी कि अधिकतर परिवार सिसौदिया हैं या नहीं। उससे पहले भी इस सम्बन्ध में मतभेद था कि वे सिसौदिया हैं या नहीं। मेरे मन में इस बारे में शंका नहीं है कि शिवाजी राजपूत थे और भोसले परिवार राजपूताने सिसौदियों में से ही एक था। शहाजी के एक पत्र में तो 'हम ही वे राजपूत' ऐसा उल्लेख है। इस आधार पर यह मुद्दा अधिक स्पष्ट हो जाता है।

शिवाजी महाराज जन्मजात 'क्षत्रिय' थे या नहीं यह मुद्दा अर्थहीन है। शिवाजी क्षत्रिय थे, मैं भी क्षत्रिय हूं इसलिए मैं भी महान हूं, शिवाजी भोसले थे और मेरा पारिवारिक नाम भी भोसले है अतः मैं महापुरुष हूं, यदि कोई ऐसा प्रत्यक्ष या परोक्ष सम्बन्ध बनाना चाहे तो बात दूसरी है। जिसके पास शिवाजी की महानता के साथ रिश्ता जोड़ने, उनके बड़प्पन में अपना सम्मान बढ़वाने हेतु जाति और कुल नाम के अतिरिक्त दूसरा कुछ न हो, वही शिवाजी के वंश-परिवार की चर्चा करे। उनका जन्म किस परिवार में हुआ, इससे अधिक महत्वपूर्ण यह है कि उन्होंने काम क्या किये। जन्म कहीं हो वह किसी के अपने बस की बात नहीं। कुछ करना या न करना हमारे हाथों में होता है। संक्षेप में, जिनके हाथों और कुछ नहीं लगता वे परिवार की रामकहानी गाने के अतिरिक्त कर ही क्या सकते हैं?

Scanned with CamScanner

शिवाजी के सहयोगी सामान्य किसान

यदि शिवाजी के नाम के साथ कोई वर्ण की श्रेष्ठता प्रस्थापित करना चाहे तो वह ध्यान में रखे कि, शिवाजी के अधिकांश सहयोगी उच्च वर्ग के नहीं थे। इसी के साथ वे सरदार, जमीदार, वतनदार भी नहीं थे। वे थे निम्न जातियों के समझे जाने वाले हीन, दीन, गरीब किसान।

जिन मावलों की जांबाजी, निष्ठा और असीम त्याग के बलबूते पर शिवाजी अतुलनीय पराक्रम कर पाये, वे सभी सामान्य किसान थे।

प्रारंभिक दिनों में, पुराने जागीरदारों-सरदारों ने शिवाजी का पूरा-पूरा साथ नहीं दिया था, परन्तु जो छोटे-बड़े नये सेनानायक शिवाजी ने तैयार किये, वे सभी साधारण लोग थे और वीरता के बल पर महान बने।

पन्हाला की घेराबन्दी में से सही-सलामत भाग निकलने में जो शिवाजी का मददगार बना वह शिवा नाई था। अफजल खान के वध के अवसर पर शिवाजी के साथ विश्वसनीय और चुस्त-चालाक लड़ाकू के रूप में गया शिवा भी जाति से नाई था। उसका परिवारिक नाम संकपाल था। वह जाबली प्रदेश के कोण्डीवली गांव का निवासी था। वह भी एक साधारण व्यक्ति था।

शिवाजी के खुफिया विभाग का प्रमुख बहिरजी नाईक 'रामोशी' (अपराध प्रवृत्ति की एक जनजाति) जाति का था। प्रत्यक्ष रूप से खेती-किसानी करके आजीविका कमाने वाले, साधारण कर्मियों को शिवाजी ने साथ लिया और अपने शासन का निर्माण किया। किसानी करने वाले मराठा कुनबियों को परम्परागत रूप से शूद्र ही समझा जाता था।

व्यक्ति विशेष के उदाहरणों के साथ ही इतिहास में समुदायों का उल्लेख भी है।

सभासद कृत बखर में एक टिप्पणी है। बेरड, रामोशी, आडेकरी आदि, लोगों को उनके सामर्थ्य के अनुसार सेवा में लिया गया। फल-स्वरूप, शिवाजी के राज्य में अपराध और उपद्रव कभी भी नहीं होते थे। अपराधी समझे जाने वाले लोगों को अपनी वीरता दिखाने का अवसर मिला और आम तौर पर उन्होंने उपद्रव नहीं किये।

शिवाजी ने जो नौसेना खड़ी की थी वह भी परम्परागत क्षत्रिय या मराठों की सहायता से नहीं। शिवाजी का नौसेना प्रमुख जिस प्रकार दर्यावर्दी मुसलमान

था, उसी प्रकार नौसेना के बहुसंख्यक सैनिक मछुआरे, ढीमर, भण्डारी, मुसलमान आदि जातियों से ही आये थे। अपना पेट भरने के लिए समुद्र पर निर्भर श्रमिकों को ही शिवाजी ने सैनिक बनाया।

शिवाजी ने साधारण लोगों को महान बनाया और फिर उन साधारण लोगों ने शिवाजी को महान बनाया, और फिर सबने, मिलजुल कर विराट कार्य किया।

साधारण लोग जब किसी अच्छे विचार को अपनाते हैं तब वह विचार ही एक शक्ति का रूप धारण कर लेता है, और वह शक्ति साधारण लोगों से असाधारण काम करा लेती है। सहयोग और हिस्सेदारी के बगैर ऐतिहासिक असामान्य कार्य सिद्ध नहीं होते।

उच्चकुलीन अधिकतर ठाट-बाट से रहते थे। वे नहीं चाहते थे कि जो कुछ चल रहा था उसमें परिवर्तन हो। जो साधारण थे वही परिवर्तन के इच्छुक थे। उन्हें ही शिवाजी ने संगठित किया, शिक्षित किया, बड़ा बनाया और अत्याचारों पर अंकुश लगाया। अत्याचार समाप्त करने को वही तैयार होते जिन्हें अत्याचार सहना पड़ता था, अत्याचार करने वाले क्यों साथ जाते?

शिवाजी और धर्म-परिवर्तन

शिवाजी हिन्दू धर्मानुयायी थे, परन्तु अन्धभक्त नहीं थे। वह धर्म द्वारा अपेक्षित काम भी करते थे और अपने कार्य भी सिद्ध करते थे। उनके लिए कार्य महत्व रखता था, धर्म का कठोर पालन नहीं। एक बार वह मुसलमान बने यानि उन्होंने धर्म-परित्याग किया। हिन्दू धर्मशास्त्र बताता है, धर्म परित्याग मृत्यु के समान है। फिर मुर्दा कैसे जीवित हो सकता है? और इस जन्म में किये हुए पापों के कारण, मनुष्य पुनर्जन्म में मानवयोनि नहीं पाता। बनेगा तो बस कीड़ा-मकोड़ा-चींटी। परन्तु धर्म-परिवर्तन से मुसलमान बने लोगों को शिवाजी ने दोबारा हिन्दू बनाया। इतना ही नहीं उनके साथ रिश्तेदारियां भी जोड़ी। शिवाजी यह नहीं मानते थे कि वे धर्मभ्रष्ट हो गये, यानि नीच या शूद्र बन गये।

शिवाजी ने धर्म-परिवर्तन करके मुसलमान हुए बजाजी निम्बालकर और नेताजी पालकर को जिनका खतना हुआ था और जो दस-पांच साल तक मुसलमानों के बीच रहे थे, फिर से हिन्दू बनाया। जिस बजाजी निम्बालकर को चिढ़ाया जाता था, उन्हें शिवाजी ने अपनी पुत्री दी। अफगानिस्तान में महंमद कुलीखान

Scanned with CamScanner

के नाम से आठ साल तक रहे नेताजी पालकर की शुद्धि की गयी और उन्हें अपने बराबरी में आसन पर बिठाया।

धर्म सम्बन्धी यह प्रगतीशील विचार पेशवाई में इतने कट्टर हो चुके थे कि पेशवाई का सर्वाधिक वीर पुरुष बाजीराव अपनी मुसलमान प्रेयसी-मस्तानी के पुत्र को हिन्दू बनाने की हार्दिक इच्छा के बावजूद, हिन्दू नहीं बना पाया। शमशेर बहादुर को कृष्णसिंह बनाने की घोषणा करने वाले बाजीराव के लिए यह सम्भव नहीं हुआ, बल्कि उन्हें स्वयं ही घर छोड़ने पर विवश होना पड़ा।

क्या शिवाजी का हिन्दू धर्म और पेशवाई का हिन्दू धर्म एक ही था?

अछूतों और हरिजनों को शिवाजी ने किलेदार बनाया। पेशवाई में उनकी पीठ पर बोझ लाद कर और गले में वजन लटका कर सड़कों को शुद्ध किया जाता था। शिवाजी का हिन्दू धर्म और पेशवाओं का हिन्दू धर्म क्या एक ही था? शिवाजी के नाम से सेना बनाकर हिन्दुओं की एकता कायम करने के लिए निकले सेनापति, कौन-सा हिन्दू धर्म प्रस्थापित करना चाहते हैं? शिवाजी का या पेशवाकालीन?

शिवाजी महाराज अन्धभक्ति और थोथी समझ के किस हद तक विरोधी थे, इस पर एक मनोरंजक टिप्पणी है।

ऐसा अन्धविश्वास था कि बच्चे का उल्टा पैदा होना अशुभ होता है। इसीलिए राजाराम महाराज के पैर से पैदा होने की बात को गुप्त रखा गया। किसी ने पुत्र-जन्म की खुशी प्रकट नहीं की। महाराज को पता लगा तो उन्होंने कहा, "बच्चा उल्टा पैदा हुआ है, तो वह दिल्लीका साम्राज्य उलट देगा।" उसके बाद ही सभी आत्मविभोर होकर खुशियां मनाने लगे।

भक्ति एक बात है और अन्ध-भक्ति दूसरी बात।

❑❑❑

5. इतिहास का विरूपण क्यों?

शिवाजी और अवतार

शिवाजी के प्रति सच्ची आस्था रखने वाले व्यापक जनमानस में यह धारणा व्याप्त है कि शिवाजी ईश्वर का अवतार थे। कोई उन्हें भगवान शंकर जी का अवतार कहता है तो कोई विष्णु का। हमारे देश और हमारी परम्परा में, मनुष्य को ईश्वर का रूप लेते देर नहीं लगती। ऐतिहासिक महापुरुषों की बात तो जाने ही दीजिए, किसी सज्जन व्यक्ति को भी 'ईश्वर रूप' भला आदमी कहने की हमारी परम्परा है।

कोई यदि महापुरुष रहा, जनहितार्थ उसने कोई अच्छा काम किया कि हम उसे भगवान मान बैठते हैं। यह महज भोलापान है तो, साथ ही कुछ लोगों की स्वार्थसिद्धि का साधन भी। ईश्वर निर्माण के बगैर भक्तों का हित नहीं सधता। अतः, वे भगवान बनाते रहते हैं और अपनी कार्यसिद्धि करते रहते हैं। समकालीनों ने शिवाजी को अवतार माना था या नहीं, पता नहीं। परन्तु ऐसा दिखायी देता है कि उन पर दैवी शक्ति, चमत्कारिक बल आदि तथ्य लाद दिये गये : पक्षी के समान शिवाजी उड़ान भर सकते थे; वह शाहिस्ते खान के समक्ष दीवार में से नमूदार हुआ; उनमें अन्तर्धान हो जाने की शक्ति थी, आदि। यह वर्णन निर्विवाद रूप में मिथ्या हैं। सम्भव है कि उस युग में शिवाजी को निष्ठा और यश प्राप्ति के लिए इन अफवाहों से लाभ मिला हो, परन्तु अनाड़ीपन और इतिहास के बीच अन्तर होता है।

शिवाजी एक व्यक्ति थे, एक अच्छे व्यक्ति। महान व्यक्ति। कुशल और दूरदृष्टि सम्पन्न व्यक्ति। नीतिबद्ध और व्यावहारिक। लड़ाकू वीर और कुशल संगठक। परन्तु थे तो मनुष्य ही। भगवान नहीं, अवतार नहीं।

Scanned with CamScanner

शिवाजी को भगवान बनाकर क्या मिला? शिवाजी को ईश्वर बनाकर शिवाजी के पद-चिह्नों पर चलने के उत्तरदायित्व से मुक्ति पा ली गयी। 'शिवाजी के आदर्श व्यवहार पर अमल करो', 'प्रजा को पीड़ा न पहुंचाओ', 'बलात्कारियों को शरण न दो', 'प्रजा के धन को हाथ भी न लगाओ', 'अपने धर्म का पालन करो, परन्तु दूसरे धर्म के तिरस्कार की शिक्षा न दो', ऐसा कहा जाय तो बेधड़क टका-सा जवाब मिलता है—शिवाजी कहां और हम कहां, शिवाजी ईश्वर का साक्षात अवतार और हम ठहरे मामूली इन्सान! यह सब हमारे लिए कैसे समभ्व होगा?

शिवाजी ईश्वर का अवतार हैं; साल में एक बार उनकी जय करो, उनका जन्मदिन मनाओ, उनके नाम पर चन्दा इकट्ठा करो, थोड़ा खर्च करो, थोड़ा खाओ, सम्भव हुआ तो थोड़ा खर्च करो अधिक खाओ, माथे पर तिलक लगाओ, वीर-अबीर उड़ाओ—काम खत्म ! बस शिवाजी के अनुयायी कहलवाने की पूरी छूट मिल गई ! शिवाजी के पदचिह्नों पर चलने का उत्तरदायित्व समाप्त! शिवाजी ने प्रजा की सहायता की तो अब उनके ढोंगी भक्त जनता की 'मदद' कर रहे है। शिवाजी के नाम का दुरुपयोग कर रहे हैं। शिवाजी के भक्त प्रजा को भयभीत करने के लिए ठगी का उपयोग कर रहे। शराब के अड्डों पर, जमाखोरों के वाहनों पर, गैर-कानूनी मालवाहक मोटरों पर शिवाजी का झण्डा और तस्वीर लगायी जाती है और काले धन्धे चलाये जाते हैं। शिवाजी को ठीक से समझना चाहिए और इस सब पर रोक लगानी चाहिए। ढोंगी और भक्त के बीच का अन्तर जानने के लिए, शिवाजी को समझना चाहिए।

शिवाजी और भवानी तलवार

शिवाजी की अनुयायी भोली-भाली जनता और अद्र्ध-शिक्षितों के दिमाग में एक बात बार-बार बिठायी गयी है कि शिवाजी की सफलता का एक कारण शिवाजी महाराज पर भवानी माता का प्रसन्न होना था।

शिवाजी की भवानी तलवार ढूंढ कर जनप्रिय बनने के लिए, महाराष्ट्र के एक मुख्यमंत्री ने बहुत लम्बे समय तक प्रयास किया, तो दुसरी ओर अपने अन्तर्मन में, महाराष्ट्र में अपनी सत्ता कायम करने के सपने संजोने वाले एक दूसरे नेता 'जय भवानी-जय शिवाजी' की गर्जना कर रहे हैं।

शोधकर्ताओं ने यह सिद्ध कर दिया है कि शिवाजी द्वारा प्रयोग में लायी

गई तलवार का निर्माण पुर्तगाल में हुआ था। उस समय धातु सें तलवारें बनाने की विधि पुर्तगाल में विकसित थी। ऐतिहासिक तथ्य है कि वह तलवार पुर्तगालियों के साथ गोवा आयी। वहां से वह सावंतों के पास गई और फिर शिवाजी के पास आई। उस तलवार का भवानी माता के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। सतारा स्थित एक अजायबघर में एक तलवार है। कहा जाता है शिवाजी इस तलवार को काम में लेते थे। वही भवानी तलवार है या नहीं इस सम्बन्ध में विवाद है। परन्तु सतारा अजायबघर में स्थित इस तलवार पर, पुर्तगाली भाषा के वर्णाक्षर विद्यमान हैं। आज भी उन्हें देखा जा सकता है।

जनता के भोलेपन, जनता के विश्वास से लाभ उठाने को उद्यत लोग नहीं चाहते कि जनता सच्चाई जाने। लगातार सुबह-शाम 'जय शिवाजी—जय भवानी' कहने भर से न तो शिवाजी को समझा जा सकता है और न ही भवानी माता को।

ढोंगी भक्तों द्वारा शिवाजी को धोखा

अनेक महापुरुषों के बाबत एक तथ्य बार-बार दोहराया जाता है। तत्कालीन प्रभुत्वशाली लोग किसी महापुरुष के जीवनकाल में उसका विरोध करते हैं। उसके सिद्धान्त और कार्य का विरोध करते हैं, और संभव हो तो उसकी जान तक ले लेते हैं। लेकिन महापुरुषों की महानता ऐसे समाप्त नहीं की जा सकती। उन्हें और उनके पश्चात उनके विचारों को जनसाधारण सम्मान देते हैं, देने का प्रयास करते हैं। फिर उनके विरोधी लोग दुसरी तिकड़में भिड़ातें हैं। वह स्वयं उनके भक्त बन जाते हैं। उन्हें सिर आंखों पर बैठाते हैं। उनका जन्मदिन और पुण्यतिथी मनाते हैं। उनके मंदिर बनाते हैं, उनकी तस्वीरें छापते हैं। साथ ही, उस महापुरुष के सामान्य जनमानस के लिए कल्याणकारी विचारों को विकृत करते हैं या उन्हें मिटा डालते हैं। वे इस बात के प्रति सतर्क रहते है कि ऐसे ढोंगियों का विरोध करने वाले महापुरुषों की शिक्षा आम जनता तक न पहुंचे। वे जनता को धोखा देते हैं। मिथ्या इतिहास लिखते और पढ़ाते हैं। बड़ी सफाई के साथ झूठ और सच को गड्डमड्ड करते हैं।

जिन महापुरुषों की छवि और प्रतीक, जनसाधारण में सम्मान, श्रद्धा और निष्ठाएं प्राप्त करती हैं उन्हीं छवियों को ये सिर-आंखो पर उठाये फिरते हैं। उन्हें विकृत करते हैं और उसकी मूल आत्मा ही गारत कर देते हैं। ये बड़े चालाक लोग होते हैं। कोई सत्ता के कारण, कोई धनसंपदा के कारण, तो

Scanned with CamScanner

कोई अपनी हैसियत के कारण प्रभुत्व हासिल किये रहता है लेकिन होते सब एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं।

ज्ञानेश्वर ने संस्कृत भाषा के ज्ञान को प्राकृत भाषा में रुपान्तरित किया। उन्होंनें मुट्ठीभर लोगों की ज्ञान की ठेकेदारी तोड़ दी। लोगों तक, अनाड़ी से अनाड़ी व्यक्ति तक ज्ञान पहुंचाया और उनकी अपनी भाषा में पहुंचाया। ज्ञान के क्षेत्र में कायम ठेकेदारी के विरुद्ध बगावत की।

उनके जीवन काल में ही इन समाज के ठेकेदारों ने उनका विरोध किया। संन्यासियों के बच्चे कह कर ज्ञानेश्वर और उनके भाई-बहनों को बहिष्कृत किया, उनका यज्ञोपवीत करने से इन्कार किया (ज्ञानेश्वर के पास लाखों सोने की मुहरें नहीं थीं और न ही उनकी किसी गंगाभट्ट से भेंट हुई थी, अन्यथा हो सकता था कि जिस प्रकार शिवाजी का राज्य अभिषेक हुआ उसी प्रकार, उनका भी यज्ञोपवीत हो जाता)। ज्ञानेश्वर ने अल्पायु में ही समाधि ली! (समाधि ली, यह भी कितना सच है!)

ज्ञानेश्वर के जीवन काल में उनका विरोध करने वाले, उनकी सांस्कृतिक, धार्मिक ख्याति के उत्तराधिकारी बनकर बाद में उनकी प्रशंसा करने लगे और यही रट लगाने लगे कि ज्ञानेश्वर के समान कोई महापुरुष हुआ ही नहीं। और ज्ञानेश्वर के नाम की माला जपने लगे। प्राकृत भाषा में ग्रन्थ रचना करके ज्ञान का प्रसार करने वाले चक्रधर का भी, ज्ञानेश्वर से भी पहले सन्तों ने बहिष्कार किया था।

तुकाराम के जीवन काल में मंबाजी और उनके सहयोगियों ने उनका डट कर विरोध किया, उनके भक्तिगीतों को (अभंग) नदी में डुबाया। इन्द्रायणी नदी के अथाह तल में उनके ग्रन्थ को फेंक दिया और तुकाराम का क्या किया, सो कौन जाने? परन्तु ऐसी जोरदार अफवाहें उड़ायीं कि वह सशरीर स्वर्ग पहुंच गये। और उन्हें ले जाने वाले वायुयान का सिनेमा और चित्रों में रंगीन खाका भी खींचा गया।

नदी में डुबाये जाने पर भी, तुकाराम के भक्तिगीत (अभंग) जनता के बीच लोकप्रिय रहे। वे उन्हें गाते रहे। उनके ग्रन्थों को डुबाकर और तुकाराम को स्वर्गीय बनाकर भी, जब उन्हें लगा कि तुकाराम को समाप्त नहीं किया जा सका है तो, मंबाजी के उत्तराधिकारियों ने तुकाराम की प्रशंसा करनी शुरू कर दी। उनके भक्तिगीतों में, वे अपनी बेतुकी तुकबन्दियां घुसेड़ने लगे। उनके

भक्तिगीतों पर कथा प्रवचन करने लगे, परन्तु साथ ही यह प्रयास भी करते रहे कि तुकाराम ने अन्धश्रद्धा और अन्याय पर जो चोट की, जनता तक वे न पहुंच पायें।

बहुत दूर क्यों जायें? महात्मा गांधी के साथ क्या किया? योजनाबद्ध तरीके से उनकी हत्या की, उनका खून किया। षड्-यंत्रकारियों में से कुछ चालाकी से छूट गये। किसी को फांसी हुई, किसी को सजा मिली। अब कहते हैं, "महात्मा गांधी की हत्या एक पागल ने की।" क्या षड्-यंत्रकारी पागल थे? महात्मा गांधी की हत्या पूना के हिंदुत्ववादी नेता, नथूराम गोडसे ने की। क्या वह पागल था?

महात्मा गांधी की हत्या पर कई जगह मिठाईयां बांटी गयीं। नथूराम गोडसे का शहीद कह कर सम्मान किया गया और अब नथूराम गोडसे के सहयोगी और अनुयायी क्या कहते हैं? वे करते हैं, हम 'गांधीवादी-समाजवादी' हैं। है न कमाल?

हत्या के बाद भी जब महात्मा गांधी के नाम को समाप्त करना सम्भव नहीं दिखायी दिया तो स्वयं गान्धीवादी बनकर, गान्धी को खत्म करने के लिए निकल पड़े। विश्व इतिहास में ऐसी कई मिसालें मिलती हैं।

आज यदि शिवाजी होते...

ज्ञानेश्वर, तुकाराम, महात्मा गांधी के समान ही शिवाजी को भी विकृत ढंग से पेश करने का लम्बे समय से अभियान चल रहा है।

जागीरें बांटने के शिवाजी विरोधी थे। आज शिवाजी के अनुयायी नई-नई जागीरें बना रहे हैं। जागीरदारों से कहा जा रहा है कि अपनी जागीरों में चाहे जो कीजिए। चाहे जिस प्रकार प्रजा को लूटो, खाओ-पिओ, मौज-मस्ती करो। बस, शासन चलाने में हमारी मदद करते जाओ, ताकि हम भी प्रजा को लूट सकें। आप जरा कम लूटियें, हम जरा ज्यादा लूटें। आप हजारों में खेलिये या लाखों में, हम करोड़ों डकार जायेंगे।

यह सही है कि शिवाजी-युगीन जागीरें आज नहीं हैं, परन्तु नई जागीरें और नये जागीरदार बढ़ रहे हैं। जेड. पी. की जागीरें सभी जिलों में हैं। चीनी सम्राट नये जागीरदार ही हैं। तरह-तरह के निगम भी जागीरदारियां ही हैं। बड़ी सहकारी संस्थाएं, नगरपालिकाएं, संसद सदस्यता, विधानसभा सदस्यता ने भी

Scanned with CamScanner

जागीरदारियों का रूप ले लिया है। और ये सब जागीरदारियां उत्तराधिकार में दी और ली जा रही हैं।

इस पर किसी को कोई आपत्ति नहीं होगी कि प्रजातंत्र में सत्ता का विकेन्द्रीकरण होना चाहिए, परन्तु विकेन्द्रीकरण का मतलब जागीरदारी कायम करना नहीं माना जाता सकता। शिवाजी के युग में जागीरदार जनता को यातनाएं पहुंचाते थे, उनसे कहीं अधिक ये नये जागीरदार उन्हें कष्ट पहुंचा रहे हैं। चीनी सम्राटों का यदि किसी ने विरोध किया, तो समझिए कि वह पूरी तरह समाप्त। न तो उसे कर्ज मिलेगा, न ही खाद, और उसका गन्ना भी कोई नहीं खरीदेगा। दो साल के अन्दर ही वह बर्बाद हो जायेगा और यदि एक बर्बाद हो जाये तो दूसरे दस सिर उठाने की हिम्मत नहीं कर सकते। परिणामस्वरूप, जागीरदार की जागीरदारी और मजबूत बनती जाती है।

इन नये जागीरदारों की आंखें प्रजा की सुकुमार बेटियों पर गड़ी हैं या नहीं? बलात्कार हो रहे हैं या नहीं? प्रजा की साग भाजी के डंठल को भी हाथ न लगाने का जहां पाठ दिया गया था, उस शिवाजी के महाराष्ट्र में नये राजाओं, सरदारों और जागीरदारों के स्वागत में प्रजा के नाक में दम हो जाता है या नहीं?

और सबसे भयानक बात यह है कि यह सब कुछ 'शिवाजी महाराज की जय' के नारों के साथ जारी है। यह सब देखने के लिए यदि शिवाजी होते, तो उन्होंने क्या किया होता? यह सच है कि आज वह नहीं हैं, और यह भी उतना ही सच है कि वह कभी लौटकर नहीं आयेंगे। परन्तु उनका पढ़ाया गया पाठ तो हमारे बीच मौजूद है? उनके सबकों को अमल में उतारकर, नये जागीरदारों पर प्रहार करना ही सही मायने में शिवाजी को याद करना होगा।

आज शिवाजी के नाम पर, और शिवाजी के जयघोष के बीच हिन्दू-मुसलमान साम्प्रदायिक दंगे हो रहे हैं। उन धर्मान्धों को बताया जाना चाहिए कि, शिवाजी धर्मान्ध नहीं थे। वह हिन्दू धर्मनिष्ठ तो थे, परन्तु मुस्लिम धर्मविद्वेषी नहीं थे। वह भक्त थे, परन्तु अन्धभक्त नहीं थे।

जिस प्रकार हिन्दुओं के बीच कट्टर धर्मान्ध हैं उसी प्रकार मुसलमानों के बीच भी धर्मान्ध हैं। कुछ मुसलमान तो अपने आपको शाहजहां के उत्तराधिकारी समझते हैं और मानते हैं कि हमने इस देश में शासन किया। लेकिन यह

भी विडंबना ही है कि इस देश में मुसलमानों का शासन था तब भी सभी मुसलमानों को न तो पुलाव खाने को मिलता था, न पीने को शराब। अधिकांश तो बेचारे गरीब ही थे।

जिन मुसलमानों ने प्राणाहुति देकर शिवाजी के स्वाधीन राज्य स्थापना में योगदान किया वे भी तो आपके ही पूर्वज थे। औरंगजेब तो आपका आदिपुरुष है, मगर शिवाजी के लिए जान न्यौछावर करने वाले मदारी-मेहतर आपके कुछ भी नहीं? आदिलशाह तो आपका पूर्वज ठहरा, इब्राहिम खान, दौलतखान और काजी हैदर से आपका कोई रिश्ता ही नहीं?

शिवाजी द्वारा प्रस्थापित स्वराज, केवल हिन्दुओं के लिए नहीं था वह महाराष्ट्र निवासी मुसलमानों के लिए भी था। तो फिर महाराष्ट्र के मुसलमानों को 'शिवाजी' का आदर करना चाहिए या नहीं?

शिवाजी के नाम पर, जिस प्रकार मुसलमानों पर हमले किये जा रहे हैं, उसी प्रकार 'जय भवानी', 'जय शिवाजी' की नारेबाजी के साथ दलितों पर भी आक्रमण होते हैं। आरक्षण के विरोधी, शिवाजी की जय कहते हुए भूल जाते हैं कि शिवाजी ने जानबूझ कर दलितों को अपनी नौकरियों में रखा था, उन्हें ऊंचा उठाया था।

इतिहास को क्यों तोड़ा-मरोड़ा जाता है?

आधुनिक युग हो, या बीता युग, महापुरुषों के चरित्र, उनके विचार और उनकी प्रेरणाओं को क्यों तोड़ा-मरोड़ा जाता है?

यह अकारण नहीं होता। इसमें अज्ञानता की जैसी भूमिका रहती है वैसी ही इतिहास को तोड़ने-मरोड़ने की प्रवृत्ति और निजी स्वार्थ का भी हिस्सा होता है और इनका परिणाम भी केवल एक ही होता है।

अब शिवाजी का मूल्यांकन कीजिए

सभी ने कुल मिला कर शिवाजी के नाम का कैसा इस्तेमाल किया? गत 50 सालों में शिवाजी को ऊंचा उठाया या उन्हें नीचे धकेला? प्रादेशिक विस्तार के अनुपात में शिवाजी की मान्यता बढ़ायी या घटायी?

50 साल पूर्व शिवाजी महाराज की तस्वीरें महाराष्ट्र के बाहर भी देखने को मिलती थीं, मध्य प्रदेश, दक्षिण कर्नाटक, बड़ोदरा और गुजरात में भी।

Scanned with CamScanner

एकीकृत महाराष्ट्र का आन्दोलन शुरू हुआ। हम सबने शिवाजी महाराज के इतिहास की सहायता से महाराष्ट्र के लिए अभियान चलाया। भाषा के आधार पर संयुक्त महाराष्ट्र की स्थापना का आन्दोलन बिल्कुल ठीक था। इस सन्दर्भ में, प्रादेशिक भाषा शब्दकोष तैयार करवाने वाले शिवाजी महाराज के इतिहास को याद करना, और उनका लाभ लेना न्यायसंगत और उचित ही था, परन्तु हमने सन्तुलन नहीं रखा।

संयुक्त महाराष्ट्र आन्दोलन के एक प्रखर प्रचारक, आचार्य अत्रे कहा करते थे कि, "महाराष्ट्र के पास इतिहास है और दूसरों के पास केवल भूगोल" इस पर तालियों की गड़गड़ाहट होती, परन्तु यह अतिशयोक्ति है। महाराष्ट्र के लोगों को शिवाजी प्रिय हैं। जिस प्रकार उनके पास शिवाजी का इतिहास है, क्या उसी प्रकार कर्नाटक के पास रानी चन्नाम्मा का इतिहास नहीं है? क्या राजस्थान के साथ राणा प्रताप का इतिहास नहीं जुड़ा है? मध्य प्रदेश और गुजरात राज्य क्या कल के पैदा हुए हैं? प्रचार के बहाव में सन्तुलन नहीं रहा। संयुक्त महाराष्ट्र का निर्माण हुआ, और महाराष्ट्र के बाहर जो शिवाजी थे, उन्हें महाराष्ट्र में लाकर हमने नजरबन्द कर दिया। उन्हें केवल महाराष्ट्र तक सीमित कर दिया।

आज महाराष्ट्र में क्या चल रहा है? शिवसेना बन गई है। आरंभिक दिनों में महाराष्ट्रियनों को छोड़कर बाकियों के लिए और अब मुसलमानों के विरुद्ध, जो कुछ कहा और किया गया या किया जा रहा है, वह सब शिवाजी के नाम पर किया जा रहा है। हिन्दू एकता स्थापित हुई, मराठा महासंघ का निर्माण हुआ, पतित पावन नामक संगठन बनाया गया। शिवाजी और भवानी की जय जयकार जारी रही।

जो शिवाजी पूरे महाराष्ट्र के थे, उन्हें महाराष्ट्र के हिन्दुओं का पूज्य बना दिया गया, और अब तो वे सभी हिन्दुओं के भी नहीं रहे। उन्हें 'गौ-ब्राह्मण पालनहार' बनाया गया। मराठा महासंघ बनने के बाद, उन्हें मराठों का शिवाजी बना दिया गया। आरक्षण का विरोध करते समय गला फाड़-फाड़ कर 'शिवाजी महाराज की जय' बोली गयी। मराठवाड़ा और अन्यत्र, दलितों की बस्तियों पर आक्रमण करते समय 'जय भवानी, जय शिवाजी' के नारे लगाये गये और शिवाजी को, मात्र उच्चवर्णीय हिन्दुओं का बना दिया गया, यानि ब्राह्मणों और नये-पुराने, सच्चे-झूठे 96 कुलों के मराठों का बना दिया गया।

शिवाजी को निजी स्वार्थसिद्धि का साधन बनाया गया। इसी प्रकार की

एक घटना विश्व महायुद्ध के समय हुई थी। अंग्रेज चाहते थे कि लोग सेना में शामिल हों, उन्होंने पोस्टर छापे। पोस्टर पर शिवाजी की तस्वीर छापी, और आवाहन किया "शिवाजी के अनुयायियों सेना में भर्ती हो। शिवाजी वीर थे, आप भी वीर हैं। युद्ध में चलिये।" देश को गुलामी में जकड़ कर रखने वालों ने, शिवाजी के नाम का उपयोग किया और अब गरीब जनता के बीच जाति और सम्प्रदाय के नाम पर ताण्डव मचाने वाले, देश को छिन्न-भिन्न अवस्था में देखने के अभिलाषी, शिवाजी के नाम को भुना रहे हैं।

वे तो जो कुछ कर रहे हैं वह करते रहेंगे, परन्तु हम उन्हें यह सब क्यों करने दें? वे गलत इतिहास बनाते हैं या इतिहास छुपाते हैं और केवल 'जयकार' करते हैं। परन्तु हमें केवल 'जयकार' नहीं करनी चाहिए, बल्कि हमें इतिहास जानना चाहिए।

सत्ता, संपदा, प्रतिष्ठा ज्ञान आदि पर अपनी इजारेदारी कायम रखने के लिए वे केवल शक्ति का ही प्रयोग नहीं करते। केवल बल और साहस को ही काम में नहीं लाते, बल्कि विचारों का प्रयोग करते हैं। इतिहास का इस्तेमाल भी करते हैं। वे अपने विचार इस प्रकार व्यक्त करते हैं, इस प्रकार आम आदमी को पट्टी पढ़ाते हैं, ऐसा तात्विक ज्ञान उनके गले उतारते हैं, ऐसा इतिहास पढ़ाते है कि अंततः लाभ उन्हें ही पहुंचे। इन इजारेदारियों को कायम रखने में, उक्त विचारों से, तात्विक ज्ञान से, सच्ची, झूठी, विकृत, तथ्यहीन इतिहास से मदद मिलती है, विचार अत्यधिक कारगर शस्त्र होता है, अधिक प्रभावशाली होता है, बन्दूक से अधिक श्रेष्ठ होता है। इसलिए इस हथियार का प्रयोग ये प्रभुत्वशाली लोग करते हैं।

अतः इनकी इजारेदारी को खत्म करने के इच्छुक लोगों को भी अपना वैचारिक अस्त्र मजबूत बनाना होगा।

वैचारिक शक्ति के बगैर परिवर्तन सम्भव नहीं, अतः जनता को चाहिए कि वह शिवाजी के सही इतिहास का अनुसंधान करे, उनका उचित अर्थ निकाले। इतिहास में जो त्याज्य हो उसका परित्याग करे, भविष्य की ओर बढ़ने में जो सहायता पहुंचाये, नये विकसित विचारों से लैस करके, उन्हें अपनायें।

शिवाजी के इतिहास में, विचारों में, व्यवहार में और कार्य की प्रेरणा में आज भी बहुत कुछ उपयोगी है। उसे ठीक से समझा जाना चाहिए और आगे बढ़ाया जाना चाहिए।

❑❑❑

Scanned with CamScanner

छत्रपति शिवाजी महाराज के पत्र

चिपलून के जुमलेदार, हवलदार और कारकुनों के नाम

शक 1595 बैसाख शुक्ल 15
हिजरी सन् 1074 सफर 12
ईसवी सन् 1673 मई 19

श्री भवानी शंकर

उन सभी सरकार द्वारा मान्यताप्राप्त, जुमलेदारों, हवलदारों और कारकुनों, जो मौजा हलवर्ण, तहसील चिपलून, दाभोल प्रान्त, में स्थित फौज से जुड़े हैं, प्रति महाराज शिवाजी राजे की ओर से—कस्बा चिपलून की फौज के लिए सरकार ने प्रबन्ध नियुक्त किया है और इसके बाद घाटी क्षेत्र में लश्कर ले जाने का कोई मतलब नहीं है। चिपलून में लश्कर का पड़ाव था। इसलिए दाभोल प्रान्त में वर्षाऋतु में घुड़साल के लिए दाना भूसा संचयित किया गया था। उसमें से अच्छा-खासा हिस्सा खत्म हो गया। चिपलून और आसपास की टुकड़ियों में फौज का ही अच्छा-खासा घास-भूस खर्च हुआ उसके सम्बन्ध में कोई समाचार नहीं है। इस परिस्थिति में बैसाख के बीस दिन की गर्मियां भी घुड़साल के लिए बहुत हैं। अनाज, दाने-पानी की कमी तो हो ही गई है, परन्तु आवश्यक हुआ इसलिए कारकुनों के पास से और किले पर जो अनाज था वह दिला कर, घुड़साल के लिए काम चलाऊ व्यवस्था की गयी है। आप मनमाना दाना, रोज का राशन, घास मांगेंगे, जब तक है तब तक बेफिक्री से घोड़ों को खिलायेंगे। खत्म हो जाने पर बरसात में मिल नहीं पायेगा, भुखमरी हो जायेगी, घोड़े मरने लगेंगे। इसका अर्थ होगा कि घोड़ों के हत्या के दोषी

आप ही हैं। आप टुकड़ियों पर दबाव डालेंगे। ऐसे में सिपाही जायेंगे, कुणवियों से कोई अनाज लायेगा, कोई रोटी, कोई घास, कोई ईंधन, कोई साग और कोई पत्ते। ऐसा होने पर अपनी जान हथेली पर लेकर जो कणवी घर बनाये बैठे हैं, वे भी भागने लगेंगे। कई भूखों-मरने लगेंगे, और फिर वे सोचेंगे कि आप लोग मुगलों से भी बदतर हैं। उनमें असंतोष फैलेगा। तब प्रजा और घोड़ों को सताने की सारी बदनामी आप लोगों पर आयेगी। ये ठीक से समझ लें, सिपाही हो या पैदल सेना, जिस गांव में रुके, वहां की प्रजा को तनिक भी पीड़ा पहुंचाने की आवश्यकता नहीं। सरकारी खजाने से आपका हिस्सा आपके पास पहुंचा दिया गया है। अनाज, पशु के लिए चारा या ईंधन, साग-भाजी और भूसी नकद खरीदी जाय। ऐसा न करके किसी पर अत्याचार या ज्यादती करने और किसी के साथ झगड़ा करने की आवश्यकता नहीं। घुड़साल के लिए जो प्रबन्ध किया गया है, वह वर्षाऋतु भर चलना चाहिए। जिस परिणाम में अनाज, रोज का राशन कारकुन दें उसी परिमाण में लें। भूखे न रहना पड़े, प्रतिदिन खाने को मिले और धीरे-धीरे घोड़े तन्दुरुस्त हों, ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए। कारकुनों से अकारण बहस करना या यह दो, वह दो कहने, प्रबन्धक कार्यालयों और गोदामों में घुस कर लूटपाट मचाने की आवश्यकता नहीं और वर्तमान गर्मियों के लिए घुड़साल के लिए जैसा प्रबन्ध है, वैसा ही रहना चाहिए। कोई अलाव जलायेगा, कोई गलत-सलत स्थानों पर भोजन पकाने के लिए चूल्हा जलायेगा, कोई चिलम में आग लगायेगा, पास पड़ी घास में हवा के कारण अचानक आग लग सकती है। एक हिस्से में आग लगने से सारे हिस्से जल जायेंगे। घास के गट्ठर में किसी ओर से भी आग जाकर पड़ी तो सारा घास और गट्ठर भक्क से जल जायेगा। यह तो सभी जानते ही हैं कि तब कुछ कुणवियों की गर्दनें उड़ाने और कुछ कारकुनों को उचित चेतावनीपूर्ण सजाएं देने से भी खाना बनाने हेतु लकड़ी मिलने से रही। अतः, सख्ती के साथ, अच्छी तरह घुम फिर कर निगरानी की जाय।.... रात में घर में दीया जलता रहे और अकस्मात चूहा उसकी जलती बाती ले जाये, ऐसा नहीं होना चाहिए। आग से नुकसान न हो। घास बच पाये ऐसी व्यवस्था की जाय ताकि वर्षाऋतु में घोड़े बचे रह सकें। अन्यथा घोड़ों को फिर बांधना नहीं पड़ेगा, खाने को नहीं देना पड़ेगा और होगा यह कि घुड़साल खत्म, आप अपाहिज!

इसी कारण आपको विस्तृत रूप से लिख रहा हूं, जितने भी जुमलेदार, हवलदार, कारकुन हों वह ध्यान से यह रुक्का सुन लें, और चौकन्ने रहें, लगातार प्रतिदिन की खबर रखें, चेतावनी दें। इसके अनुरूप बर्ताव में जिससे

Scanned with CamScanner

ढिलाई होगी, अवमानना जिसका अपराध होगा, उस पर बदनामी आयेगी, उससे मराठों की प्रतिष्ठा तो जायगी ही, उसका रोजगार भी नहीं बचेगा। ध्यान से समझिये, उल्लंघन पर छोडा नहीं जायेगा। यह जानकर तद्नुसार व्यवहार रखें।

छ. 12 सफर।

❑❑❑

महसूल के सम्बन्ध में सूबेदार को पत्र

शके 1598 भादो शु. 8
हिजरी सन् 1077 रजब 6
ईसवी सन् 1676 सितम्बर 5

श्री शंकर

प्रति श्रीमान राजगौरव युक्त रामाजी अनन्त सूबेदार मामला प्रेभावेली को राजे शिवाजी राजे का प्रणाम। विशेष कि सरकार ने मेहरबान होकर आपको शुभेच्छा व्यक्त की है क्योंकि आपने चोरी न करना, ईमानदारी के साथ सरकारी काम करना ऐसी क्रियाएं की हैं। उसी प्रकार सागभाजी के एक भी डंठल पर मन मैला न करते हुए ठीक-ठीक बर्ताव और उससे भी स्तुत्य, कमोवेश जो भी, शासन संस्था के लिए ठीक, लगान, संचय, उगाही जिस समय जो उचित और संभव हो वैसे करते रहना और हर एक प्रकार से सरकार का भला... हो वह करते जाना, प्रदेश में खेत बटाई (खेत की उपज में जोतने वाले और भूमि स्वामी का हिस्सा) का अनुबंध शुरू है परन्तु प्रजा को प्रजा का अपना हिस्सा मिले और शासन का अंश शासन के पास पहुंचे, ऐसा करते जाना है। प्रजा पर कठोर हुए, तो सरकार आपसे खुश नहीं होगी, यह ठीक से समझना। दूसरी बात यह कि वस्तु का नकद के रूप में ही महसूल लिया जाये, ऐसा कोई सरकारी आदेश नहीं है। नकद महसूल देते हुए, नकद न हो तो वस्तु का महसूल वस्तु के रूप में ही ले कर संचय किया जाये, और समय-समय पर इससे बचा जाये कि वह महंगा बिके और लाभ हो। महसूल मौसम में लिया जाकर और उसे भंडारण करने के बाद, किस वस्तु को किस समय बेचना उचित होगा उसी मौसम में बेचा जाय, कि वह घर

Scanned with CamScanner

जमाई की तरह पड़ा न रहे और बिक्री में महंगा हो। इस हुनर से नारियल गोला, छालिया, काली मिर्च बेची जाये। यदि दस बाजारों में वस्तुएं महंगी बिकीं तो जो लाभ होगा, वह आप ही मेहनत की उजरत है ऐसा समझना। इसके बाद प्रजा को समर्थ और बुआई योग्य किस प्रकार बनाया जा सकता है, इस सम्बन्ध में आपके लिए सरकारी आदेश है कि आप कष्ट उठा कर भी गांव-गांव का दौरा करें। जिस गांव में पहुंचें वहां जितने कर्मी हों उन्हें इकट्ठा कीजिए। उनमें से जिसमें जो खेत जोतने का, मनुष्य बल होगा उस हिसाब से उसके पास अनाज बीज हों तो ठीक है, वह खेत जोतेगा। जिसके पास खेत जोतने की शक्ति है, मनुष्य हैं और जोतने के लिए बैल, हल, पेट को अनाज नहीं तो उस के बगैर असहाय होकर वह यदि बेकाम हो गया हो, तो उसे नकद रुपया हाथ में देकर, दो बैलों का रुपया देकर, बैल खरीदवाये जायें, और पेट भरने को ढाई कुंटल या पांच कुंटल (एक खड़ी = 20 कुड़व = 160 पायली = 2½ कुंटल लगभग) अनाज देकर, जो खेत उसके लिए जोतना संभव हो, जुतवाया जाये। बाद में उससे बैल और अनाज की रकम, बगैर सूद-ब्याज के जैसी की तैसी, उधारी के रूप में उसके सामर्थ्य के अनुसार धीरे-धीरे वसूल की जाये। और उसके समर्थ हो जाने तक देखभाल की जाये। इस मद में यदि आप दो लाख की सीमा तक भी खर्च करेंगे और कुणवियों तथा कर्मियों की खबर लेकर, उन्हें समर्थ बनाकर, उनसे जोत करायेंगे, और परती जमीन जोत में लाकर अधिक महसूल प्राप्ति का काम करेंगे तो सरकार उसे स्वीकार करेगी। ...और जब तक उस पर पिछला बाकी है और उसे वापस दिये जाने की स्थिति न हो और यदि चुका लिया जाय तो वह बेकाम हो जाये, ऐसा बकाया यदि प्रजा पर हो और वह सबका सब माफ करना हो तो वसूली रोक कर सरकार को अग्रिम रूप से समझाया जाये कि कर्जदार ने जमीन जोत में लाकर, सरकार को किस प्रकार लाभ पहुंचाया है और फलां-फलां बकाया वसूली गरीब परिवार के लिए माफ की गई है।... सरकार लिखित माफीनामा देगी और जो बकाया रहेगा वह हिसाब से वसूल करते रहीये। यह मैंने मूल्यांकन के बाद आपको आपके पद के अनुरूप उपदेश लिखित रूप में प्रस्तुत किया है उसे ठीक प्रकार समझकर तदनुसार अमल में लाया जाये कि अपने कर्तव्य का फल मिले और सरकार आप पर प्रसन्न होती रहे। भली प्रकार समझ लीजिए।

हिजरी 6 माह रजब।

❑❑❑

जजिया (धार्मिक) कर के सम्बन्ध में औरंगजेब को पत्र

शक 1579
ईसवी सन् 1657

सत्यवचनी शिवाजी-औरंगजेब

भाग्य योग से बगैर अनुमति के दरबार से निकल आया परन्तु यथासंभव सेवा धर्म में उपस्थित हूं। वह सेवा अच्छी है और प्रयास भी उत्कृष्ट है। हिन्दुस्तान, ईरान, तुर्क, रोम और सीरिया के बादशाह, सामंत, मुगल, राजा और राणा लोगों को और उनके अलावा सातों देशों में रहने वालों, रेगिस्तानों और मैदानों के यात्रियों को पता है ही, परन्तु उनसे भी अधिक समुद्र की तरह मन रखने वाले, आप पर भी प्रगट हो ही गया होगा। इसलिए आबाल वुद्धों का जिसमें कल्याण हो वह कई बातें लिखी जाती हैं। सुनने में आया है की वर्तमान हमारे इधर आने के बाद, सम्राट का खजाना खाली हो गया, और समस्त जमा पूंजी खत्म हो गई है। अतः उसे पूरा करने के लिए हिन्दू जनता पर जजिया (धर्म) कर की आमदनी से सम्राट अपना काम-काज चला रहे हैं। इसके पहले, बादशाह अकबर ने 52 साल तक न्यायपूर्ण शासन किया। यही कारण है की ईसाई, दाऊदी, मोहम्मदी के अतिरिक्त ब्राह्मण और शेवडे आदि हिन्दू लोग अपने-अपने धर्मों का पालन ठीक प्रकार कर सके और उन धर्मों के पालन हेतु उन्हें बादशाही अनुदान प्राप्त होता था। फलस्वरूप वह (अकबर-अनु.) जगद्गुरु के रूप में प्रसिद्ध हुए और ऐसी विवेक बुद्धि के सहयोग से उनकी नजर प्रत्येक स्थान पर पड़ती थी और उन्हें वहां सफलता मिलती थी, और उन्होंने

Scanned with CamScanner

विस्तृत क्षेत्र पर अधिकार किया। उसके बाद नुरूद्दीन जहांगीर बादशाह ने भगवान पर भरोसा कर 22 साल बादशाहत की और बाद में स्वर्ग के लिए प्रस्थान किया। शाहजहां सरकार बत्तीस साल बादशाहत करने के उपरान्त भी कायम रही। पूरा जीवन अच्छाइयों में व्यतीत कर निरन्तर प्रसिद्धि पायी। इसलिए स्पष्ट सिद्धांत है कि जिस व्यक्ति ने भी प्रसिद्धि पायी और बाद में उसने अपने पीछे सुयश छोड़ा उसे जीवित अवस्था में अकूत संपदा प्राप्त होती रही है। जिन उल्लिखित सम्राटों की महानता और वीरता का मैंने वर्णन किया है, उन्होंने वैसे ही नियमों और कार्यकलापों को कार्यरूप दिया। सारी दुनिया उनकी रक्षा के लिए चिन्ताग्रस्त रही। वे बादशाह भी धर्म कर वसूलने में सक्षम थे। परन्तु, यह विश्वास करके कि सभी छोटे-बड़े—जो अपना-अपना धर्माचरण करते हैं—वे सब भगवान के हैं, उन्होंने किसी पर अत्याचार करने की सोची भी नहीं। उनके उपकार की प्रसिद्धि अब तक है और हर एक छोटे-बड़े की जिव्हा पर उनकी प्रशंसा और आशीर्वाद है। जैसी जिसकी नीयत, वैसी उसकी बरकत। उन बादशाहों की दृष्टि जन कल्याण पर थी। वर्तमान में आपके आधिपत्य से कई किले और प्रदेश निकल चुके हैं, और शेष बचे हुए भी जा रहे हैं... हर एक महल की आय एक लाख में से एक हजार मिलना दुर्लभ हो गया है। जब बादशाह और उनके शाहजादों के घर में दरिद्रता का निवास हो गया हो तो अधीनस्थ जागीरदारों और अमीरों के हालात, समझ में आते हैं। सारांश यह है की सिपाही हैरान व परेशान हैं, साहूकार चिल्ला रहे हैं और मुसलमान रो रहे हैं, हिन्दुओं के मन में रोष है और कई लोग भूख नहीं मिटा पाते हैं, तो फिर शासन-संचालन कैसा? और ऊपर से धार्मिक कर को लेकर पूरब से पश्चिम तक ऐसी बगावत फैल गई है कि हिन्दुस्तान के सम्राट, फकीर, ब्राह्मण, जोगी, संन्यासी, बैरागी, अनाथ-गरीब और थके-मांदे सभी लोगों से धार्मिक कर ले रहे हैं, और तैमूर सम्राट का नाम डुबोने का काम कर रहे हैं। आकाश से उतरी हुई किताब यानी कुरआन, वह भगवान की वाणी है, उसमें निर्देशित किया गया है कि भगवान विश्व का है या मुसलमानों का है। ठीक हो या गलत, उन दोनों का निर्माण भगवान द्वारा हुआ है। जहां मस्जिद है, वहां उसे अजान से याद किया जाता है, और मन्दिर में घंटा बजा कर। उनमें से किसी धर्म का विरोध करना अपने आप में अपने धर्म से हटना और ईश्वर विधान को अस्वीकृत कर, उस पर आरोप लगाना है। किसी वस्तु पर लांछन लगाना, वस्तु पैदा करने वाले पर आक्षेप लगाना है। धर्म पर कर का नियम भारी भूल है। पेशजी सुलतान अहमद गुजराती, ऐसे ही मनमाने और

अनुचित तरीके से रहा। वह जल्दी ही डूब गया। अतः इस वृद्ध अवस्था में ऐसा जकड़ा होना वीरता को तनिक भी शोभा नहीं देता।... मेरी अच्छी सलाह है की पाप से दूषित हुए मन को साफ किया जाय। इस पर भी "हिन्दुओं को पीड़ा पहुंचाने मे ही धर्म है" ऐसा मन में विचार हो तो राजसिंह से धार्मिक कर लिया जाये यानी फिर इधर से कठिन नहीं होगा। इस पर भी सेवा के लिए तप्तर हूं परन्तु अनाथ-गरीब तो चींटी-मच्छरों की तरह हैं। उनको मिटाने में कोई महानता नहीं है। अधीनस्थ लोग भी देखते-देखते ही आग को तिनकों से ढक लेते हैं। वह भी आश्चर्यजनक प्रतीत होता है।

शासन का सूरज उदयांचल के प्रकाश से भी प्रखर हो।

❑❑❑

Scanned with CamScanner

सन्दर्भ एवं टिप्पणियां

1. सभासद कृष्णाजी अनन्त लिखित **सभासदों की बखर**, सं. पी. जोशी, पृ. 23, 24।
2. जी. एस. सरदेसाई, **सामर्थ्यवान शिवाजी**, पृ. 26, 36-37।
3. सभासद कृष्णाजी अनन्त द्वारा लिखित **बखर**, पृ. 25।
4. पृ. 26।
5. सभासद कृष्णाजी अनन्त लिखित **बखर**, पृ. 26। आर. कुलकर्णी लिखित **शिवकालीन महाराष्ट्र**, पृ. 74-75।
6. पी. एन. देशपाण्डे लिखित **छत्रपति शिवाजी महाराज के पत्र**, पृ. 4-5।
7. **91 कलमी बखर** (सम्पादक वाकसकर) पृ. 144। एस. पागड़ी द्वारा (अंग्रेजी में) लिखित **छत्रपति शिवाजी**, पृ. 292-293।
8. जे. एन. सरकार द्वारा (अंग्रेजी में) लिखित **शिवाजी और उनका कालखण्ड**, पृ. 365।
9. पी. एन. देशपाण्डे लिखित **छत्रपती शिवाजी महाराज के पत्र**, पृ. 117-118।
10. रामचन्द्र पन्त अमात्य द्वारा लिखित **आज्ञा पत्र** (पी.एन.जोशी द्वारा संपादित) पृ. 43-44।
11. देशपाण्डे लिखित **छत्रपती शिवाजी महाराज के पत्र**, पृ. 157-158।
12. ए. पागड़ी (अंग्रेजी में) लिखित **छत्रपती शिवाजी**, पृ. 36-37।
13. देशपाण्डे लिखित **छत्रपति शिवाजी महाराज के पत्र**, पृ. 143।
14. **उपरोक्त** पृ. 146-147।
15. एस. पागड़ी लिखित (अंग्रेजी में) **छत्रपति शिवाजी**, पृ. 287।
16. पारसनिस द्वारा लिखित **मराठे सरदार**।

17. **उपरोक्त**।
18. बी. हसरत द्वारा (अंग्रेजी में) लिखित **दारा शिकोह-जीवन और कृतित्व**, पृ. 260-268।
19. टी. एस. शेजवलकर लिखित **शिवछत्रपति**, पृ. 561।
20. राजवाडे लिखित **मराठों के इतिहास के स्रोत**, खण्ड 17, पृ. 17।
21. जी. एस. सरदेसाई लिखित, **सामर्थ्यवान शिवाजी**, पृ. 40-41।
22. ग्रान्ट डफ लिखित **मराठों का इतिहास**, खण्ड 1, पृ. 129।
23. अबर अली लिखित (अंग्रेजी में) **औरंगजेब की छत्रछाया में मुगलशाही**, पृ. 30-31।
24. **हिन्दू-मुस्लिम तनाव और सम्प्रदायवाद का खतरा**, पृ. 91
25. टी. एस. शेजवलकर द्वारा लिखित, **शिवछत्रपति**, पृ. 356-357। एस. पागडी लिखित **छत्रपति शिवाजी**, पृ. 96।
26. एच. मुखिया लिखित (अंग्रेजी में) **मध्यकालीन भारत का इतिहास और सम्प्रदायवाद व भारतीय इतिहास लेखन में साम्प्रदायिक नजरिया**, पृ. 34।
27. केपन द्वारा लिखित मराठों की बखर।
28. रामचन्द्र पन्त अमात्य द्वारा लिखित, **आज्ञा पत्र**, पृ. 27।
29. सभासद कृष्णाजी अनन्त लिखित, **सभासदों की बखर**, पृ. 33।
30. एस. पागड़ी लिखित (अंग्रेजी में) **छत्रपति शिवाजी**, पृ. 39।
31. पी. एन. देशपाण्डे लिखित **छत्रपति शिवाजी महाराज के पत्र**, पृ. 199-200।
32. एस. एम. गर्गे लिखित **औरंगजेब, जजिया कर और शिवाजी महाराज**, पृ. 153-155। बी. आर. काम्बले लिखित (अंग्रेजी में) **शिवाजी और उनका काल खण्ड**।
33. टी. एस. शेजवलकर लिखित **शिव छत्रपति**, पृ. 502।
34. जे. एन. सरकार लिखित (अंग्रेजी में) **शिवाजी और उनका युग**, पृ. 205-206 और 211-213।
35. देशपाण्डे लिखित **छत्रपति शिवाजी महाराज के पत्र**, पृ. 167।
36. कृष्णाजी अनन्त सभासद लिखित **सभासदों की बखर**, पृ. 33।
37. जे. एन. सरकार लिखित **शिवाजी और उनका युग**, पृ. 202-206।
38. **उक्त**, पृ. 214-215।
39. एस. पागडी लिखित, **छत्रपति शिवाजी**, पृ. 69।

Scanned with CamScanner